खंड 3 – उत्पादन और वाणिज्यिक प्रथाएँ

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

कलकत्ता के एक गुमनाम कलाकार द्वारा 'आतिशबाज़ी बनाने वाले' का चित्र, **c-1794&1804**
Watercolour on paper

साभार : **British Library, Add. Or. 1115**

इकाई 6 शिल्प उत्पादन, विनिर्माण और कारीगर समूह*

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 कृषि–आधारित उत्पादन

6.2.1 वस्त्र उद्योग

6.2.2 नील

6.2.3 चीनी, तेल आदि

6.3 खनिज, खनन और धातु

6.3.1 खनिज उत्पादन

6.3.2 धातु

6.4 काष्ठ–आधारित शिल्प

6.5 अन्य शिल्प

6.6 उत्पादन का संगठन

6.7 सारांश

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.0 उद्देश्य

हमारे अध्ययन के काल के दौरान भारत में उच्चकोटि का शिल्प उपलब्ध था। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- भारत में उत्पादित विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के बारे में जान सकेंगे;
- खास–खास शिल्पों के प्रमुख केन्द्रों का उल्लेख कर सकेंगे;
- देश के विभिन्न भागों में पाए जाने वाले खनिजों की जानकारी हासिल कर सकेंगे;
- कुछ वस्तुओं के उत्पादन में अपनाई जाने वाली तकनीकों के बारे में जान सकेंगे; और
- कुछ शिल्पों के उत्पादन के संगठन की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

हम जिस काल का अध्ययन कर रहे है उस काल में शिल्प उत्पादन का स्तर काफी ऊंचा था। यह शिल्प उत्पादन व्यापार और वाणिज्य की पद्धति से जुड़ा हुआ था। हम मुख्य वाणिज्यिक केन्द्रों में और उसके आसपास उत्पादन संबंधी गतिविधियों में एक प्रकार की सक्रियता पाते है।

*प्रो. सुरेन्द्र गोपाल, इतिहास विभाग, पटना यूनिवर्सिटी, पटना। यह इकाई हमारे पाठ्यक्रम **ई एच आई 04 गैर–कृषि उत्पादन खंड 6, इकाई 22** का पुनर्प्रकाशन है।

फारसी ऐतिहासिक अभिलेखों से शिल्प और उत्पादन की तकनीक की कम जानकारी मिलती है। इस क्षेत्र में यूरोपीय यात्रियों के वृतान्तों और दस्तावेजों तथा विभिन्न यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों के पत्र व्यवहार से ज्यादा व्यापक सूचना मिलती है। ये कम्पनियाँ उत्पादन की प्रक्रिया और उत्पादन की गुणवत्ता का गौर से निरीक्षण करती थी।

शिल्प उत्पादन मूल रूप से घरेलू बाजार की मांग और खपत से निर्देशित होता था। 17वीं शताब्दी में विदेशी बाजारों से मांग बढ़ने लगी और इससे यहाँ की उत्पादन गतिविधि प्रभावित होने लगी।

इस इकाई में हम प्रमुख शिल्प, उनके केन्द्रों, उपयोग में आने वाले कच्चे मालों और जहाँ संभव होगा उत्पादन की तकनीकों की भी चर्चा करेंगे। हम खनिजों की उपलब्धता और उनके उत्पादन पर भी विचार करेंगे। हम कुछ चुने हुए शिल्पों में उत्पादन के संगठन का भी विश्लेषण करेंगे।

6.2 कृषि–आधारित उत्पादन

यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि आज के संदर्भ में कृषि आधारित उद्योगों का इस्तेमाल कुछ विशिष्ट प्रकार के उद्योगों के लिए होता है। यहाँ हम इसका प्रयोग उन उद्योगों के लिए कर रहे हैं जिनमें कच्चा माल कृषि उत्पादों से आता था।

जिस काल का हम अध्ययन कर रहे है उस काल में अधिकांश उत्पादन उन क्षेत्रों में था जिनमें कच्चे माल की आपूर्ति कृषि उत्पाद से होती थी। **बी एच आई सी–109 की इकाई 14** पढ़ते समय हमने गौर किया था कि हमारे यहाँ कपास, गन्ना, नील, तम्बाकू जैसी उच्च कोटि की फसलों का उत्पादन होता था। अतः इनसे जुड़े शिल्पों का विकास स्वाभाविक था। आइए पहले कपड़ा उत्पादन पर विचार करें।

6.2.1 वस्त्र उद्योग

वस्त्र उद्योग के अन्तर्गत हम मुख्य रूप से सूती, रेशमी और ऊनी वस्त्रों के उत्पादन का अध्ययन करेंगे।

सूती कपड़ा

उप–हिमालय क्षेत्र को छोड़कर लगभग पूरे भारत में सूती कपड़ा बनाया जाता था क्योंकि कपास की पैदावार लगभग हर जगह होती थी। अबुल फ़ज़ल ने सूती कपड़े के उत्पादन के विभिन्न केन्द्रों का नामोल्लेख किया है।

गुजरात वस्त्र उत्पादन के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में से एक था। यहाँ अहमदाबाद, भड़ौच, बड़ौदा, खम्भात, सूरत आदि जैसे प्रमुख उत्पादन केन्द्र थे। राजस्थान में अजमेर, सिरोंज और कई छोटे शहरों में कपड़ा बनाया जाता था। उत्तर प्रदेश में लखनऊ और इसके आसपास के कई शहरों जैसे बनारस, आगरा, इलाहाबाद आदि में कपड़े का उत्पादन होता था। उत्तर में दिल्ली, सिरहिंद, समाना, लाहौर, सिआलकोट, मुलतान और थट्टा जैसे क्षेत्रों में उत्तम कोटि का कपड़ा बनाया जाता था। बंगाल, बिहार और उड़ीसा में सोनारगाँव, ढाका, राजमहल, कासिम बाजार, बालासोर, पटना और कई छोटे–छोटे शहरों में कपड़ा बनाया जाता था।

दक्खन में, बुरहानपुर और औरंगाबाद में उत्तम कोटि के सूती वस्त्र निर्मित किए जाते थे। महाराष्ट्र के पश्चिमी तट पर चोल और भिवण्डी कपड़ा बनाने के प्रमुख केन्द्र थे। दक्षिण में कोयम्बटूर और मालाबार में भी अच्छी कोटि के वस्त्र बनाए जाते थे।

कई केन्द्रों में केवल सूत काता जाता था, उसे बुनाई केन्द्रों में और यहाँ तक कि विदेश में भी भेजा जाता था। इस प्रकार धागे की कताई एक विशेषीकृत व्यवसाय बन गया। वस्त्र उत्पादन के प्रमुख केन्द्रों और उसके आसपास के इलाकों में किसानों और महिलाओं ने इसे अपनी आय का अतिरिक्त साधन बना लिया और बुनकरों को धागे की आपूर्ति करने लगे।

मैसूर, विशाखापट्टनम और गंजम में महिलाएँ बड़ी संख्या में सूत काता करती थीं। भड़ौच, कासिम बाजार और बालासोर धागे की बिक्री के प्रमुख बाजार थे। सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में गुजरात बंगाल को सूत की आपूर्ति किया करता था। ढ़ाका मलमल के लिए परिष्कृत सूत की जरूरत होती थी जिसे महिलाएँ तकली की सहायता से काता करती थीं।

कपड़े की कई कोटियां उपलब्ध थी, हमीदा नकबी ने मुगल साम्राज्य के पांच प्रमुख उत्पादन केन्द्रों में उत्पादित उनचास प्रकार के कपड़ों का नामोल्लेख किया है। यूरोपीय दस्तावेजों में एक सौ से अधिक नामों का उल्लेख है। देश में उत्पादित होने वाले सूती कपड़ों की सभी कोटियों का उल्लेख करना बहुत मुश्किल है। प्रत्येक क्षेत्र की अपनी विशिष्टताएँ थी।

इनमें से कुछ की चर्चा यहाँ की जा सकती है। *आइन–ए–अकबरी* में **वापता** नामक उच्च कोटि के सूती वस्त्र का उल्लेख हुआ है जो आमतौर पर सफेद या एक रंग का होता था। यूरोपीय सभी प्रकार के सूती वस्त्रों के लिए 'कैलिकों' शब्द का प्रयोग करते थे। इसका मतलब मोटा उजला कपड़ा भी होता था। **ताफता** रेशमी कपड़ा होता था जिसमें कभी–कभी सूती धागे भी बुने गए होते थे। **जरतरी** कपड़े में सोने या चांदी के तार बुने होते थे। मलमल मोटे सूती कपड़े का एक उत्तम प्रकार था **छींट** सूती कपड़े में फूल–पत्ती या अन्य प्रकार के डिजाइन बने होते थे। खासा मलमल का ही एक प्रकार था। यह उत्तम कोटि का महंगा कपड़ा था। (इरफान हबीब ने पकड़ों की शब्दावली की विस्तृत सूची प्रस्तुत की है, देखिए *एन एटलस ऑफ द मुगल अम्पायर*, पृ.69–70)

कुछ कपड़ों का नाम उनके उत्पादन स्थल पर आधारित था जैसे दरियाबादी और खैराबादी, समिआना (समाना) लखौरी(पटना के निकट लखावर) आदि। कुछ प्रदेशों में खास प्रकार के कपड़े ही बनाये जाते थे, गुजरात में **बाफता**, सोनारगांव और ढाका में **मलमल** आदि इस प्रकार की विशेषता के उदाहरण है। इग्लिश, डच और फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनियाँ आदि के आने से यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों की गतिविधियों में तेजी आई और उसके कारण सत्रहवीं शताब्दी में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए।

सूत्री वस्त्रों में उच्च कोटि के उजला सादे सूती कपड़े की मांग सबसे ज्यादा थी। इसे विभिन्न नामों से जाना जाता था–बिहार और बंगाल में **अम्बरती**, गुजरात में **बाफता** आदि। बंगाल का मलमल जिसको खासा कहते थे छींट, रंगीन वस्त्र और रेशम के धागों को मिलाकर बनाए गए कपड़े, कुछ महत्त्वपूर्ण कोटियाँ थी। अहमदाबाद अपने रंगीन कपड़े छींट के लिए प्रसिद्ध था।

कपड़ा उत्पादन में कई चरणों से गुजरना होता था। सबसे पहले ओटाई होती थी, जिसमें कपास से बीज अलग किया जाता था। बाद में धुनियाँ अपने धनुषाकार यंत्र से कपास या रूई को साफ करता था इसके बाद तकली पर इस रूई से धागा बनाया जाता था। बुनकर

करघे पर इस धागे से वस्त्र बुनते थे। आमतौर पर प्रचलित करघा क्षैतिज होता था जिसे पैर के पास लगे पैडल से चलाया जाता था।

बना हुआ कपड़ा अभी भी अपरिष्कृत रूप में होता था। उपयोग में लाने के पहले इसका रंग उड़ाया जाता था (सफेद किया जाता था) या रंगा जाता था। यह काम एक अलग समुदाय द्वारा सम्पन्न किया जाता था। हालांकि यह प्रक्रिया हर जगह अपनाई जाती थी पर कुछ केन्द्र प्रसिद्ध हो गए। पानी की खासियत की वजह से गुजरात में भड़ौंच कपड़ों को विरंजित (रंग उड़ाने के लिए) करने के लिए प्रसिद्ध हो गया। ईस्ट इंडिया कम्पनी आगरा, लाहौर आदि से बाफता खरीदती थी और उसे भड़ौंच और नवसारी में विरंजित करने के बाद ही निर्यात करती थी। अहमदाबाद, सूरत, पटना, सोनारगांव, ढ़ाका, मसूलीपट्टम आदि शहरों में भी बड़े पैमाने पर कपड़ो ंको विरंजित करने का काम किया जाता था।

कपड़ों के विरंजन के लिए उन्हें पानी में सोखा जाता था (उत्कृष्ट कपड़े) या विशेष घोल में उबाला जाता था।

रंगाई और छपाई भी विशेषीकृत व्यवसाय हो गए थे। कपड़ा रंगने वाले को **रंगरेज** कहते थे और उन्हें एक अलग जाति का माना जाता था। आमतौर पर सब्जियों के रंगों का उपयोग किया जाता था। लाल रंग चै या लाख से और नीला रंग नील से प्राप्त किया जाता था।

रेशम (सिल्क)

रेशम से भी कपड़ा बनाया जाता था। अबुल फजल बताता है कि कश्मीर में बड़ी मात्रा में रेशम के कपड़े बनाए जाते थे। पटना और अहमदाबाद भी रेशम वस्त्र के लिए जाने जाते थे। बनारस का भी इस क्षेत्र में नाम था। सत्रहवी शताब्दी में बंगाल में रेशम का सबसे ज्यादा उत्पादन हुआ जिसे विदेश और भारत के अन्य हिस्सों में निर्यातित किया गया। बंगाल में कासिम बाजार और मुर्शिदाबाद में रेशम के वस्त्र बनाए जाते थे। 17वीं शताब्दी के मध्य के आसपास 25 लाख पाउंड के करीब प्रति वर्ष उत्पादन होने का अनुमान लगाया गया था। लगभग साढ़े सात लाख पाउंड केवल डच व्यापारी ही अपरिष्कृत रूप में ले जाते थे। 1618 ई. में लंदन के रेशम बुनकरों ने इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा इसके आयात पर प्रतिबंध लगाने के लिय ब्रिटिश संसद को एक प्रतिवेदन दिया। 1701 ई. में बंगाल के रेशम वस्त्रों का आयात रोक दिया गया। इसके बावजूद बंगाल रेशम वस्त्र उत्पादन का महत्त्वपूर्ण केन्द्र बना रहा।

ऊन

कपड़ा बनाने के लिए ऊन का भी उपयोग किया जाता था। इसमें कश्मीर की शॉल सबसे प्रसिद्ध थी जिसे पूरी दुनिया में निर्यातित किया जाता था। इन शॉलों में उपयोग में लाया जाने वाला उत्कृष्ट ऊन तिब्बत से आयातित किया जाता था। उत्कृष्ट कोटि के ऊनी वस्त्रों का आयात व्यापारी आमतौर पर उच्च वर्ग के लिए किया करते थे। लगभग पूरे उत्तर भारत में ऊन से कम्बल बनाए जाते थे।

इसके अलावा सूती दरियाँ, कालीन (रेशमी और ऊनी) तम्बू और रजाइयाँ आदि भी बनाई जाती थीं। कालीन बुनाई कपड़ा उत्पादन की एक अन्य शाखा थी। उत्तर में बिहार (दाउदनगर, ओबल आदि) दिल्ली, आगरा, लाहौर, मिर्जापुर आदि इसके प्रमुख केन्द्र थे। दक्षिण में वारंगल भी कालीन बनाने के लिए प्रसिद्ध केन्द्र था। कोरोमंडल तट पर स्थित

मसुलीपट्टम में भी कालीन बनाई जाती थी। कालीन काफी मात्रा में नहीं बनाए जाते थे और अभी भी ईरानी कालीनों का ही उपयोग होता था। अकबर ने ईरानी ढंग के रेशमी कालीनों को राजकीय कारखाने में बनवाने में रूचि दिखाई।

तम्बुओं का उपयोग मुख्य रूप से सम्राट और उनके सरदार किया करते थे। इसलिए उनकी भी जरूरत पड़ती थी। अबुल फजल ने ग्यारह प्रकार के तम्बुओं का उल्लेख किया है। उनके आकार प्रकार में काफी विभिन्नता होती थी।

विभिन्न प्रकार के कपड़ों की सूती रेशमी या चांदी और सोने के धागे से कढ़ाई भी कपड़ा उद्योग से जुड़ा एक शिल्प था। काफी संख्या में शिल्पियों ने यह व्यवसाय अपना रखा था।

6.2.2 नील

पूरे देश में और विदेश में भी इसकी मांग काफी अधिक थी। जैसा कि हमने **बी एच आई सी–109 की इकाई–14** में पढ़ा है कि नील की खेती बड़े पैमाने पर की जाती थी।

केवल पहाड़ी क्षेत्रों को छोड़कर पूरे देश में नील की खेती की जाती थी। इसकी उत्कृष्ट कोटि आगरा के निकट बयाना में पाई जाती थी। इसके बाद अहमदाबाद के निकट सरखेज का स्थान आता है, यह नीले रंग का होता था और रंगाई के काम आता था, इसलिए पूरे देश में और विदेश में भी इसकी मांग थी।

गुजरात में जम्बुसार, भड़ौच, बड़ौदा आदि में भी नील से रंगाई होती थी। उत्तर भारत में आगरा और लाहौर में बड़ी मात्रा में नील की खरीद बिक्री होती थी। कोरोमंडल तट पर मसूलीपट्टम भी नील का प्रमुख बाजार था।

इसमें से रंग निकालना काफी आसान था। पौधों को पानी से रख दिया जाता था। जब नील पानी में घुल जाता था, तो उसे दूसरे हौज में डाल दिया जाता था, जहाँ नील तल में बैठ जाता था, इसे छान कर टिक्की के रूप में सुखा लिया जाता था। अधिकांशतः किसान ही नील निकालने का काम किया करते थे।

6.2.3 चीनी, तेल आदि

पूरे देश में गन्ना उपजाया जाता था और बड़े पैमाने पर इससे चीनी निकाली जाती थी। आमतौर पर गन्ने से तीन प्रकार के उत्पाद निकाले जाते थे; गुड़, चीनी और मिसरी। सभी गन्ना उत्पादक क्षेत्रों में गुड़ बनाया जाता था और स्थानीय तौर पर इसका उपभोग किया जाता था। अन्य दो प्रकार मुख्य रूप से बंगाल, उड़ीसा, अहमदाबाद, लाहौर, मुल्तान और उत्तरी भारत के हिस्सों में बनाए जाते थे। 17 वीं शताब्दी के दक्खन के बारे में लिखते हुए थिविनो बताता है कि गन्ना उपजाने वाले सभी किसानों के पास अपनी भट्टी होती थी। अबुल फ़जल के अनुसार एक मन चीनी का मूल्य लगभग 128 दाम था, जबकि मिसरी का मूल्य प्रति मन 220 दाम था।

गन्ने को कोल्हू में दबाकर उससे रस निकाला जाता था, यह कोल्हू या तो हाथों से चलाया जाता था या फिर पशुओं की सहायता ली जाती थी। गुड़ या चीनी बनाने के लिए गन्ने के रस को चौड़े बर्तनो में भट्टी पर चढ़ा दिया जाता था। रस को उबालने के दौरान ही विभिन्न प्रकार के गुड़ या चीनी बनाई जाती थी। बंगाल की चीनी उत्तम कोटि मानी जाती थी और यूरोप तथा ईरान में इसकी व्यापक मांग थी।

तेल भी अधिकांशतः ग्रामीण आधारित उद्योग में ही आता था। तेल के बीज को कोल्हू में डाल दिया जाता था और बीज से तेल निकल आता था। कोल्हू हाथों से भी चालाया जाता था और इसे चलाने में पशुओं की भी सहायता ली जाती थी। तेल निकालने वाली जाति को तेली कहते थे। बचा हुआ उत्पाद (खल्ली) जानवरों को खिलाया जाता था।

बोध प्रश्न–1

1) कपड़ा उत्पादन के महत्त्वपूर्ण केन्द्रों के नाम बताइए।

....

....

....

2) भारत में रेशम उत्पादन पर संक्षेप में टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

3) भारत में पैदा होने वाले नील के मुख्य प्रकारों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

6.3 खनिज, खनन और धातु

16 वीं और 17वीं शताब्दी के दौरान भारत में गहरा खनन नहीं किया जाता था, बल्कि विभिन्न प्रकार के खनिजों और धातुओं के लिए धरती के ऊपरी स्तर में ही खनन किया जाता था।

6.3.1 खनिज उत्पादन

नमक एक अनिवार्य खाद्य वस्तु थी और भारत इसमें आत्म निर्भर था। राजपूताना में सम्भर झील, पंजाब में नमक पत्थर की खानें और समुद्र का पानी इसका मुख्य स्रोत था। सिंध, कच्छ, गुजरात के तटवर्ती प्रदेशों, मालाबार, मैसूर, बंगाल, आदि में समुद्र के पानी से नमक बनाया जाता था। नमक हर जगह नहीं पाया जाता था अतः यह प्रान्तीय और अन्तर्प्रान्तीय व्यापार की एक मुख्य वस्तु था।

शोरा एक प्रमुख खनिज पदार्थ था। यूरोप में इसकी खूब मांग थी। इससे बारूद बनाया जाता था। आरंभ में शोरा अहमदाबाद, बड़ौदा आदि में ही निकाला जाता था, पर बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिए दिल्ली–आगरा क्षेत्र में भी इसका निर्माण शुरू हो गया। सत्रहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बिहार में पटना शोरा बनाने का महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गया। पटना के आसपास के क्षेत्रों में शोरा इकट्ठा किया जाता था और उसे नाव द्वारा गंगा के रास्ते हुगली और फिर यूरोप ले जाया जाता था।

मिट्टी मिले शोरे से शोरा निकालना एक आसान विधि थी। जमीन पर छिछले हौज बनाए जाते थे, उसमें मिट्टी मिले शोरा को डाल दिया जाता था। शोरा पानी में घुल जाता था और मिट्टी नीचे जम जाती थी। इसके बाद बड़े बर्तनों में शोरा पानी को उबाला जाता था, पानी वाष्प बनकर उड़ जाता था और शोरा प्राप्त किया जाता था। भारतीय कारीगर मिट्टी का बर्तन उपयोग करते थे। टवैर्नियर (17वीं शताब्दी) के अनुसार डच हॉलैंड से आयातित तांबे के बर्तनों में उबालने का काम करते थे। एक स्रोत के अनुसार एक वर्ष (1688) में केवल बिहार में ही दो लाख मन से ज्यादा शोरा का उत्पादन होता था।

छोटे पैमाने पर फिटकरी और अभ्रक जैसे अन्य खनिजों का भी उत्पादन होता था।

6.3.2 धातु

सही मायने में भारत में सोने और चाँदी की खाने नहीं थीं। कोलार की प्रसिद्ध सोने की खान का पता नहीं लग पाया था। नदी तल से थोड़ी बहुत मात्रा में सोना निकाला जाता था, पर इसमें इसके मूल्य से लागत ज्यादा हो जाती थी। फिच (1584) ने बिहार में नदी की रेत से सोना निकालने की विधि का उल्लेख किया है। इसी प्रकार दूसरे प्रान्तों में भी नदी तलों में सोना पाया जाता था।

चाँदी की आपूर्ति अधिकांशतः आयात से ही होती थी। सिक्का बनाने के लिए सोने और चाँदी का उपयोग किया जाता था। गहना बनाने के लिए भी इनका खूब उपयोग होता था तथा लोग इसे बहुमूल्य धातु के रूप में अपने पास जमा भी रखते थे।

राजस्थान ताम्र उत्पादन का प्रमुख केन्द्र था। खेतरी में ताँबे की खाने थीं। इनमें ज्यादातर ताँबे का उपयोग सिक्का बनाने के लिए किया जाता था। इससे छोटे बड़े बर्तन और घरेलू उपयोग की वस्तुएँ बनाई जाती थी।

भारत में लोहा काफी मात्रा में पाया जाता था। लोहे की खानें भारत के उत्तर, पूर्व, पश्चिम, मध्य और दक्षिण भागों में पाई जाती थी। अबुल फजल ने बंगाल, इलाहाबाद, आगरा, बिहार, गुजरात, दिल्ली और कश्मीर को प्रमुख लौह उत्पादक क्षेत्र बताया है। बिहार में छोटानागपुर और इससे लगे उड़ीसा के इलाकों में लोहा बड़ी मात्रा में पाया जाता था। दक्षिण में पाए जाने वाले लोहे से इस्पात बनाया जाता था। लोहे का उपयोग हल, कुल्हाड़ी, कील, पेंच, तलवार, खंजर आदि बनाने के लिए किया जाता था। दक्षिण, खासकर गोलकुण्डा में बनाए जाने वाले इस्पात से तलवारें बनाई जाती थी जिसकी सारी दुनियाँ में माँग थी।

कुछ दूसरे धातु भी थोड़ी मात्रा में उत्पादित किए जाते थे। उत्तर और पश्चिमी भारत में सीसा पाया जाता था।

हीरे का खनन

भारत के कुछ हिस्सों में हीरों का खनन किया जाता था पर गोलकुण्डा की खान सर्वाधिक प्रसिद्ध थी। दूसरे स्थानों में बरार में बीरागढ़, मध्यप्रदेश में पन्ना, बिहार में छोटानागपुर या खोखरा उल्लेखनीय है।

6.4 काष्ठ–आधारित शिल्प

लकड़ी से कई प्रकार के शिल्प जुड़े हुए थे। लकड़ी निर्मित आवागमन के साधनों में पालकी

और बैल गाड़ी प्रमुख थे। इन्हें कई शैलियों में बनाया जाता था और अमीर लोग इसमें नक्काशी करवाते थे, और सुसज्जित करवाते थे। भारत में लंबा तटीय प्रदेश था और उत्तर भारत में कई नदियाँ थी। इस कारण भारत में हमेशा से नौकाओं और जहाजों की जरूरत रही है।

कई प्रकार की नौकाओं का निर्माण किया जाता था। छोटी आकार की नौकाओं से लेकर बड़ी–बड़ी भारवाहक नौकाओं का निर्माण किया जाता था।

अरब सागर और बंगाल की खाड़ी के बंदरगाहों जैसे थाट्टा, सूरत, बसीन, गोवा, क्रैगनोर, कोचिन, मसूलीपट्टम, नारस–हरिहरपुर, सतगाँव और चटगाँव प्रमुख निर्माण केन्द्र थे। जब यूरोपवासियों की गतिविधियों में तेजी आई तो उन्होंने अपने जहाजों की इन्हीं केन्द्रों में मरम्मत करवानी शुरू कर दी। यहाँ बने जहाज उन्हें पूर्वी समुद्रों के लिए उपयुक्त लगे और उन्होंने भारत में बने जहाज भी खरीदे। इस प्रकार यूरोपवासियों की इस बढ़ती मांग के कारण 17 वीं–18वीं शताब्दी में जहाज निर्माण उद्योग में तेजी से प्रगति हुई। दरवाजा, खिड़की और घरेलू लकड़ी के सामान जैसे बकसे, खाट आदि बनाने में भी लकड़ी का उपयोग होता था। समृद्ध लोग उत्कृष्ट कोटि की लकड़ी का फर्नीचर बनवाते थे।

बोध प्रश्न–2

1) भारत में शोरा उत्पादन पर दस पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

2) निम्नलिखित के प्रमुख क्षेत्रों का उल्लेख कीजिए :

i) हीरा खनन ....

....

ii) जहाज निर्माण ....

....

6.5 अन्य शिल्प

प्रत्येक क्षेत्र का अपना विशेष शिल्प होता था। यहाँ उन सभी शिल्पों पर विस्तार से विचार करना संभव नहीं इसलिए हमे केवल महत्त्वपूर्ण शिल्पों का ही जिक्र करेंगे।

पत्थर कटाई एक महत्त्वपूर्ण शिल्प था क्योंकि इसका उपयोग घर, महल, किला, मन्दिर, आदि बनाने में किया जाता था। भारतीय पत्थर शिल्पी अपनी कारीगरी के लिए प्रसिद्ध थे।

गैर–कृषि उत्पादों में चमड़े की वस्तुओं जैसे जूता, चप्पल, पुस्तकों की जिल्द आदि का विशेष महत्व है। इनका निर्माण पूरे देश में होता था।

कागज

विवेच्य काल में अहमदाबाद, दौलताबाद, लाहौर, सियालकोट, पटना के निकट बिहार शरीफ, आदि स्थानों पर कागज बनाया जाता था। अहमदाबाद में भी कई प्रकार के कागज बनाए

जाते थे और इसे अरब देशों, तुर्की और फारस को निर्यातित किया जाता था। कश्मीर का कागज भी प्रसिद्ध था।

उत्तर भारत में कई स्थानों पर कागज बनाया जाता था और उसका स्थानीय उपयोग होता था। दक्षिण भारत में इसका उत्पादन कम होता था। अधिकांश कागज हाथ का बनाया होता था और यह साधारण कोटि का होता था।

मिट्टी के बर्तन

समकालीन दस्तावेजों को देखने से पता चलता है कि उस समय लोग खाना बनाने, पानी और अनाज रखने आदि के लिए मिट्टी के बर्तन का उपयोग करते थे। इसके अतिरिक्त सभी घरों की छत खपड़ैल की हुआ करती थी। मिट्टी से बने बर्तनों की माँग अवश्य ही काफी अधिक थी। भारत के प्रत्येक बड़े गांव में एक कुम्हार होता था, जो प्रतिदिन काम में आनेवाले मिट्टी के बर्तन बनाया करता था।

साधारण मिट्टी के बर्तनों के अलावा चीनी मिट्टी के परिष्कृत बर्तन भी बनते थे। मनुची (1663) बताता है कि खानपान के लिए बने मिट्टी के परिष्कृत बर्तन शीशे से ज्यादा बारीक और उत्कृष्ट और कागज से ज्यादा हल्के हुआ करते थे। मार्शल (1670) ने भी उत्कृष्ट खानपान के बर्तनों का उल्लेख किया है।

देश के कई भागों में शीशे का सामान भी बनाया जाता था। भारतीय कारीगर साबुन, हाथी दाँत और सीप की वस्तुएँ तथा सींघ से भी विभिन्न चीजें आदि बनाया करते थे।

कई शिल्प वन आधारित थे, इनमें से एक लाख था। लाख का उपयोग चूड़ी बनाने, दरवाजों, खिड़कियों, खिलौने को रंगने और लाल रंग बनाने के लिए किया जाता था। यह बंगाल, बिहार, असम, उड़ीसा, मालवा, गुजरात, मालाबार, आदि के जंगलों से निकाला जाता था। बंगाल लाख सबसे अच्छा माना जाता था। सूरत में लाख की चूड़ियाँ और खिलौने बनाए जाते थे। यह मुहर लगाने के काम भी आता था।

6.6 उत्पादन का संगठन

विवेच्य काल में भारत में कारीगरों के व्यक्तिगत प्रयास से लेकर कारखाने तक की व्यवस्था मौजूद थी। शिल्प की जरूरतों और आवश्यकताओं के अनुरूप विभिन्न शिल्पों और उद्योगों में उत्पादन के संगठन में विभिन्नताएँ थीं।

ग्रामीण कारीगर : गाँवों की जरूरतों को पूरा करने वाली वस्तुओं का निर्माण कारीगर करता था और वह जजमानी व्यवस्था नामक ग्रामीण व्यवस्था का एक नियमित अंग था। इनमें लोहार, कुम्हार और चर्मकार की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। आमतौपर पर उन्हें उनकी सेवा के बदले अनाज दिया जाता था। वे कृषि से जुड़े औजार उपलब्ध कराते थे और उनकी मरम्मत करते थे। दक्खन और महाराष्ट्र में यह व्यवस्था ज्यादा संगठित थीं जहाँ ग्रामीण कारीगरों और सेवकों को बलूतेदार कहा जाता था। दक्खन में अलूतेदार नामक एक और समुदाय था, जिन्हें भी कई प्रदेशों में गाँव के कारीगरों की श्रेणी में शामिल किया गया था।

ग्रामीण इलाकों में मुद्रा अर्थव्यवस्था के प्रवेश और इसकी बढ़ती माँग के कारण जीवन यापन संबंधी दृष्टिकोण में परिवर्तन आ गया। तपन राय चौधरी के अनुसार, कम से कम सत्रहवीं

शताब्दी में, एक गुजर बसर पर आधारित अर्थव्यवस्था में फर्क आया। इस पद्धति में कारीगर अपना माल बनाया करता था और उसे उपज का एक हिस्सा मिलता था। अब वह अपना सामान नगद बेचने लगा और अतिरिक्त काम के लिए अलग से नगद या वस्तु रूप में भुगतान लेने लगा। पर इसके साथ–साथ ग्रामीण उत्पाद में हिस्सा या राजस्व मुक्त जमीन का एक भाग देने की प्रथा भी कायम थी।

तपन राय चौधरी बताते हैं कि संभवतः अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक लम्बी और मध्यम दूरी के व्यापार के लिए सारा उत्पादन इन कारीगरों पर निर्भर था, जो जजमानी व्यवस्था में पूरी तरह गुंथे थे।

माँग बढ़ने के साथ ग्रामीण कारीगर शहरी बाजारों में भी अपना माल भेजने लगे। ग्रामीण कारीगर इधर–उधर घूमते रहते थे और एक गाँव से दूसरे गाँव या पास के शहर में जाते रहते थे।

बाजार के लिए उत्पादन

कारीगर स्वतंत्र और व्यक्तिगत तौर पर बाजार के लिए उत्पादन करता था। अलग–अलग वस्तुएँ अलग–अलग कारीगर बनाया करते थे, और उन्हें बाजार में बेचा जाता था। एक डच यात्री पेल्सर्ट (1623) बताता है कि विभिन्न शिल्पों से जुड़े कारीगरों की लगभग सौ विशेषीकृत श्रेणियाँ थी। वस्त्र उद्योग में उच्च कोटि की विशेषता देखने को मिलती है। वस्त्र के उत्पादन के प्रत्येक चरण से एक अलग समुदाय जुड़ा था। मसलन रूई धुनना, सूत कातना, कपड़ा बुनना, सिल्क का धागा बनाना, विरंजन, रंगाई, छपाई से अलग–अलग विशेषीकृत समुदाय जुड़ा हुआ था। गाँव के किसान भी कई प्रकार की चीजें बनाते थे और इसमें उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। कृषि आधारित सभी उद्योगों जैसे नील, चीनी, रेशम और सूती धागों की कताई, नमक और शोरा का निर्माण, से वे सक्रिय रूप में जुड़े हुए थे।

उत्पादन की स्थानीयता एक महत्त्वपूर्ण विशेषता थी। जैसाकि पहले जिक्र किया जा चुका है, प्रत्येक क्षेत्र में किसी खास प्रकार के शिल्प का ही उत्पादन होता था। यूरोपीय व्यापारियों के अनुसार उन्हें अलग–अलग सामान लेने के लिए अलग–अलग जाना पड़ता था। केवल मसूलीपट्टम और बनारस में सात–सात हजार बुनकर थे। इसी प्रकार कासिम बाजार में 2500 रेशमी बुनकर थे।

कारीगर व्यक्तिगत स्तर पर उत्पादन करने के लिए कच्चा माल खुद प्राप्त करता था और बने माल को खुद ही बेचने की भी व्यवस्था करता था। कारीगर या शिल्पी अपने घर में ही निर्माण कार्य करता था। इन कारीगरों के पास पूंजी कम होती थी। अतः व्यक्तिगत तौर पर वे कम माल तैयार कर पाते थे और व्यापारियों को इनसे माल लेने के लिए काफी प्रयास करना पड़ता था। माल की गुणवता में भी अन्तर होता था।

दादनी

इन समस्याओं के कारण उत्पादन के नए तरीके दादनी का जन्म हुआ। इसमें व्यापारी कारीगरों को अग्रिम राशि दे दिया करते थे, और कारीगर दिए हुए समय पर माल देने का वादा करता था। यहाँ व्यापारी अपनी पसंद कारीगर को बता सकता था। कपड़ा उद्योग में यह प्रथा इतनी जम गयी थी कि कारीगरों को अग्रिम दिए बिना कपड़ा प्राप्त करना मुश्किल था। सत्रहवीं शताब्दी में दक्खन में बुनकर उद्योग पर व्यापारी हावी हो गए। ऐलोव के

अनुसार दक्षिण भारत में "शिल्प उद्योगों पर व्यापारिक पूंजी का प्रभाव काफी फैल चुका था। वस्तुतः कोरोमंडल तट के पास बसे सभी कारीगरों पर एक या दूसरे व्यापारी का नियत्रंण था। 17वीं शताब्दी में, कासी वीरन्ना सबसे बड़ा व्यापारी था। पालिकट को छोड़कर मद्रास से लेकर आलमगांव तक का पूरा तटीय प्रदेश उसके नियत्रंण में था। इस क्षेत्र की बुनकर बस्तियों को वीरन्ना गाँवों के नाम से जाना जाता था।

दादनी व्यवस्था में उत्पादित वस्तु की गुणवता और मात्रा निर्धारित करने में खरीदार महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता था। कारीगरों को कच्चा माल खरीदने के लिए पर्याप्त पूंजी मिल जाती थी। उनके माल की बिक्री का भी आश्वासन मिल जाता था, पर बिक्री पर उसका नियत्रंण नहीं रह जाता था।

उत्पादक केन्द्र (कारखाने)

1620–21 में अंग्रेजों ने पटना में इस प्रकार की पहली इकाई स्थापित की जहाँ रेशम के धागे बनाए जाते थे और इसमें 100 मजदूर काम करते थे। कासिम बाजार में डच कम्पनी ने अपने रेशम के कारखाने में 700–800 बुनकरों को काम दे रखा था। पर इस प्रकार की व्यवस्था इक्का–दुक्का स्थानों पर ही उपलब्ध थी (देखिए ए.जे. कैसर *"द रोल ऑफ ब्रोकर्स इन मेडिवल इंडिया"*)। जहाज निर्माण और गृह निर्माण भी ऐसा क्षेत्र था जहाँ एक साथ काफी लोग काम करते थे। दक्खन और दक्षिण भारत के लगभग सभी जहाज निमाण केन्द्रों में एक छत्र के नीचे और एक निगरानी तहत अनेक कारीगर और मजदूर काम करते थे। गृह निर्माण में भी जहाज निर्माण की तरह कई लोग एक निगरानी में काम करते थे। (देखिए ए. जे. कैसर, *Ship Buildiing in the Mughal Empire during the 17th Century'* and *Building Construction in Mughal India, the Evidence from Paintings)*

दो अन्य उत्पादक क्षेत्रों में भी काफी संख्या में कार्मिक (हालांकि वे बहुत निपुण नहीं होते थे) एक साथ कार्य करते थे। पहला, गोलकुण्डा और दक्खन की हीरे की खानों में 30,000 से 60,000 लोग काम करते थे। यहाँ खान निरीक्षक शासक से जमीन के टुकड़े किराए पर ले लेता था। ये सभी अपने जमीन के टुकड़ों पर 200 से 300 खनिजों से काम करवाते थे। इन खनिकों को प्रतिदिन के हिसाब से मजदूरी मिलती थी। इसी प्रकार खनन के मौसमः (दिसम्बर–जनवरी) में बिहार के हीरे की खानों में लगभग 8000 आदमी काम करते थे। आमतौर पर ये किसान या खेतिहर मजदूर होते थे, जो अपने खेतों में फसल रोपकर यहाँ आते थे।

शोरा के उत्पादन में भी एक साथ कई लोग काम करते थे। इस मामले में भी एक मालिक के निरीक्षण में छोटे–समूहों में कई लोग काम करते थे। बिहार में इन्हें नूनियाँ कहा जाता था। बढ़ती माँग को पूरा करने के लिए डच और अंग्रेजों ने शोरा निकालने के लिए अपनी इकाइयाँ स्थापित की। शोरे की इन शोधक इकाइयों में यूरोपीय कम्पनियाँ सारे साधन उपलब्ध कराती थीं और कार्मिक उनके साधनों से ही काम करते थे।

शाही कारखाने

विवेच्य काल में शाही कारखाने उत्पादन की एक प्रमुख विशेषता थे। ये कारखाने 14–15वीं शताब्दियों में भी कार्यरत थे। ये कारखाने राजकीय व्यवस्था का हिस्सा थे और कुलीन वर्गों के लोग भी अपने कारखाने चलाते थे। इनमें बनी चीजों का निर्माण राजकीय घरेलू आवश्यकताओं और दरबार के लिए हुआ करता था। कई उच्चस्थ कुलीनों के अपने कारखाने

हुआ करते थे। आमतौर पर इनमें महंगी और विलास की वस्तुओं का उत्पादन होता था। निपुण कारीगर एक छत के नीचे काम करते थे और उत्पादन करते थे। राज्य के अधिकारी उनका निरीक्षण करते थे। कारीगारों के पास इतनी पूंजी नहीं थी कि वे राजकीय जरूरतों के अनुसार वस्तुओं का निर्माण कर सकें। इस जरूरत को पूरा करने के लिए कारखानों का निर्माण हुआ। इन बहुमूल्य वस्तुओं के निर्माण के लिए बहुमूल्य कच्चे माल की जरूरत होती थी और शासन नहीं चाहता था कि ये बहुमूल्य वस्तुएँ कारीगर अपने घर ले जाकर रखें। यहाँ हम इन कारखानों की कार्य पद्धति पर विस्तार से विचार नहीं करने जा रहे हैं, क्योंकि इनमें बाजार के लिए नहीं बल्कि राजकीय और व्यक्तिगत जरूरतों को पूरा करने के लिए उत्पादन होता था।

हमने देखा कि विवेच्य काल के दौरान उत्पादन की प्रक्रिया में परिवर्तन आ रहा था। तपन राय चौधरी के कथन से इसका निष्कर्ष प्रस्तुत किया जा सकता है, "मुगल भारत में उत्पादन का संगठन अपरिवर्तित नहीं रहा। बहुत कुछ घटित हो रहा था, पर यह सब बहुत सीमित था। नये विकास हुए पर अतीत से नाता नहीं टूट सका। परम्परागत प्रक्रिया अभी भी जारी थी। इसके बावजूद तकनीक की अपेक्षा संगठन में अधिक आधारभूत बदलाव आया।"

बोध प्रश्न–3

1) जजमानी व्यवस्था का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

2) निम्नलिखित में से प्रत्येक पर पांच पंक्तियाँ लिखिए।

i) दादनी ....

....

....

ii) कारखाने ....

....

....

iii) शाही कारखाना...

....

....

6.7 सारांश

इस इकाई में हमने भारत में गैर–कृषि उत्पादन पर विचार किया। यह क्षेत्र काफी विकसित था और इसकी अलग पहचान थी। यहाँ वस्त्र उद्योग सबसे बड़ा उत्पादक क्षेत्र था। सूती वस्त्र की काफी मांग थी और इससे इस उद्योग को काफी बढ़ावा मिला। नील और चीनी कृषि आधारित उद्योग थे।

नमक के उत्पादन से घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती थी। शोरा उद्योग में भी बड़े पैमाने पर उत्पादन होता था। इसे निर्यात भी किया जाता था। लोहे और ताँबे का भी उत्पादन होता था। चाँदी का उत्पादन इसके मुकाबले कम होता था। इस काल के दौरान जहाज निर्माण उद्योग का भी उल्लेखनीय विकास हुआ।

यह महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि गैर–कृषि क्षेत्र में कारीगर व्यक्तिगत स्तर पर उत्पादन करता था। कुछ क्षेत्रों, जैसे शोरा और हीरा खनन में एक साथ निगरानी में काफ़ी लोग काम किया करते थे। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने रेशम के धागों को निकालने के लिए कुछ अग्रिम राशि देने की प्रथा पूरी तरह विकसित थी। राजकीय कारखाने में राजपरिवार और कुलीन वर्गो की जरूरतों को पूरा करने के लिए उत्पादन किया जाता था।

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

1. भाग 6.2.1: गुजरात, बंगाल और उत्तर प्रदेश के कुछ भाग प्रमुख कपड़ा उद्योग केन्द्र थे।
2. भाग 6.2.1: बंगाल में काफी मात्रा में रेशम का धागा बनाया जाता था और उसे देश के अन्य भागों में बनुने के लिए भेजा जाता था।
3. भाग 6.2.1: बयाना और सरखेज की दो महत्त्वपूर्ण कोटियाँ।

बोध प्रश्न–2

1. भाग 6.3.1: 17वीं शताब्दी में बिहार, बंगाल और गुजरात में बड़ी मात्रा में उत्पादक होता था।
2. देखिए उपभाग 6.3.1 और 6.3.1

बोध प्रश्न–3

1. भाग 6.5 जजमानी व्यवस्था में कारीगरों को उनकी सेवा के लिए ग्राम समुदाय द्वारा भुगतान किया जाता था।
2. देखिए भाग 6.6

इस इकाई के लिए कुछ उपयोगी अध्ययन सामग्री

Chaudhuri Tapan Ray and Irfan Habib, eds. 1982. *Cambridge Economic History of India*, Vol.-I. New Delhi: Cambridge University Press.

Sahai, Nandita Prasad. 2006. *Politics of Patronage and Protest: The State, Society, and Artisans in Early Modern Rajasthan*. New Delhi: Oxford University Press.

इकाई 7 आंतरिक व्यापार*

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 आंतरिक व्यापार के अध्ययन हेतु स्रोत

7.3 मुगल शासकों के अंतर्गत आंतरिक व्यापार

7.3.1 आंतरिक कारवाँ मार्ग

7.3.2 अंतरस्थलीय कारवाँ मार्ग

7.3.3 व्यापारी, व्यापार हेतु वस्तुएँ और उनका बाजार

7.3.4 व्यापार, वाणिज्य और राज्य

7.4 अवध का केस–अध्ययन

7.5 सारांश

7.6 शब्दावली

7.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.8 संदर्भ

7.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप मुगल साम्राज्य में आंतरिक वाणिज्य की प्रकृति के विषय में अध्ययन करेंगे। इस व्यापारिक प्रक्रिया में बहुत सी आपस में गुथी हुई गतिविधियाँ थी।

इस इकाई के अध्ययन के बाद, आप यह समझ सकेंगे कि–

- मुगलों के अधीन आंतरिक व्यापार का स्वरूप कैसा था?
- इन व्यवसायिक क्रियाकलापों में सम्मिलित प्रमुख व्यापारिक समूह कौन से थे?
- मुख्य शहरों में और बाजारों में चल रही गतिविधियाँ क्या थी?
- राज्य के साथ व्यवसाय और व्यापार के संबंध किस प्रकार के थे?
- प्रमुख आयातित और निर्यात की वस्तुओं की सूची क्या थी?
- व्यापारिक वर्ग पर लागू किये गये प्रमुख विभिन्न कर कौन से थे; और
- व्यापार की इस संरचना में प्रमुख महत्व के अंतरस्थलीय मार्ग कौन से थे?

*डॉ. दिव्या सेठी, म्युज़ियम–सेक्टर स्किलड प्रोफेशनल, संस्कृति मन्त्रालय, नई दिल्ली।

7.1 प्रस्तावना

किसी भी औपनिवेशिक इलाके के, उपनिवेश से पहले के आर्थिक विकास को समझने के लिये, हम आज के मानकों का प्रयोग नहीं कर सकते। जनसंख्या–वृद्धि की दर, कृषि के विस्तार और प्रति–व्यक्ति राजस्व की प्राप्ति को इन समाजों में आर्थिक वृद्धि दर को मापने का एक अच्छा तरीका समझा जाता है (मूसवी, 1993ः 406)। सत्रहवीं सदी में मुगल आर्थिक स्थिति में आये बदलावों में से एक था व्यापार के माध्यम से चाँदी का मुगल शासकों द्वारा प्राप्त किया जाना।

मुगलों की अर्थव्यवस्था, आधुनिक अर्थव्यवस्था से पूर्व की किसी भी व्यवस्था की तरह, अधिकांशतः कृषि कार्यकलापों पर ही आधारित थी। राज्य की राजस्व प्राप्ति में और रोजगार की उपलब्धता की दृष्टि से तुलनात्मक रूप से व्यावसायिक समाज आकार में छोटा था। हालांकि व्यावसायिक क्षेत्र पर पड़ने वाले प्रभावों को ध्यान में रखने पर, यह दिखता है कि इसका दूरगामी असर पड़ा। भू–राजस्व के रूप में जो फसल के रूप में कृषि उत्पादन को संग्रहित किया जाता था, राज्य के द्वारा उसे अंततः मुद्रा में तब्दील कर लिया जाता था। इस अंतरण के लिये बड़े पैमाने पर व्यावसायिक क्रियायें और आदान–प्रदान की आवश्यकता होती थी। इस प्रकार, समाज के विभिन्न समुदायों के जीवन में व्यापार एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में स्थापित था।

स्थानीय स्तर पर और क्षेत्रीय स्तर पर व्यावसायिक गतिविधि मुख्यतः जनसमूहों द्वारा उपयोग की जाने वाली वस्तुओं से ही जुड़ी होती थी। खाद्यान्न का व्यापार बड़े पैमाने पर होता था और इसका कुल व्यापार में एक बड़ा हिस्सा था। कुछ क्षेत्र खाद्यान्न उत्पादन में प्रमुख थे, जबकि अन्य क्षेत्रों को नियमित रूप से खाद्यान्न आयात करना होता था। बन्जारे लोग लम्बी दूरी तक कारवाँ बनाकर अनाज को एक जगह से दूसरी जगह ले जाया करते थे। अनाज के व्यापार का एक बहुत बड़ा हिस्सा जल–मार्गों के द्वारा, या तो नदी के रास्ते या समुद्री तटों के रास्ते किया जाता था। विवरण के लिये **इकाई 8** देखें, जो इस कोर्स में दी गयी है। इस इकाई में हमारा ध्यान मुगल साम्राज्य में आंतरिक व्यापार को समझने में रहेगा।

7.2 आंतरिक व्यापार के अध्ययन हेतु स्रोत

मुगलों के अंतर्गत आंतरिक व्यापार के अध्ययन हेतु मौलिक स्रोत बहुत से दस्तावेज हैं, जो फारसी और स्थानीय भाषाओं में है। इनमें ऐतिहासिक और जन्म–गाथाओं के दस्तावेज, अनेकों प्रशासनिक विभागों के सरकारी अभिलेखीय दस्तावेज और विभिन्न क्षेत्रों के साहित्य सम्मिलित हैं। विशेष तौर पर मूल्यवान हैं – अबुल फजल का *आईन–ए–अकबरी*, मिर्जा नाथान का *बहारिस्तान–ए–घायबी*, कैफी खान का *मुन्तखबू–एल–लुबाब*, अली मुहम्मद खान का *मिरात–ए–अहमदी*, अभिलेखागार में रखे गये विभिन्न क्षेत्रों के दस्तावेज, जैसे कि मराठा राज्य और राजपूताना, और दक्षिण भारत से जुड़े अभिलेख (तमिल तेलगू और अन्य भाषाओं में लिखे गये)। ये सभी अभिलेख व्यापार के, करारोपण के और आपसी संघर्ष की बहुत महत्वपूर्ण सूचनाओं से भरे हैं। राजस्व अभिलेख *(दस्तूर अमल)* इतिहासकारों द्वारा, मुगल शासन के अंतर्गत आर्थिक क्रियाओं पर प्रकाश डालने वाले स्रोतों के रूप में उपयोग किये गये। इन दस्तावेजों (अभिलेखों) को शाहजहाँ के कार्यकाल में संगठित किया गया। मुगल

साम्राज्य के अंर्तगत व्यापार के अध्ययन के लिये, औरंगजेब और अन्य मुगल बादशाहों द्वारा अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को दिये गये आदेश आदि।

विदेशी यात्रियों द्वारा तैयार किये गये अपने भ्रमण संबंधी लेखों को महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में लिया गया जिनमें अरब भ्रमणकारी इब्न–बतूना, पुर्तगाल के डी. बरबोसा, अंग्रेज टी. मारशल, डच यात्री एफ. पेलसर्ट, फ्रांसीसी एफ. बर्नीअर, और जे. बी. ट्रेवरनियर और अन्य शामिल हैं। इन सभी स्रोतों से वस्तुओं का लाना–ले जाना, व्यवसायियों का इनमें शामिल होना, और उनके राज्यों के साथ संबंधों के बारे मे पता चलता है और यह भी कि किस प्रकार, भारत की मध्यकालीन अर्थव्यवस्था तथा राजनीति पर इस व्यापार ने प्रभाव डाला।

मध्यकालीन भारत की अर्थव्यवस्था के संबंध अध्ययन का अन्य स्रोत आंग्ल भाषा में उपलब्ध सूचनाओं का संग्रह है। अपनी सीमाओं के भीतर रहते हुए, ये स्रोत बताते हैं कि भारत और पड़ोसी इलाकों के बीच में स्थलीय मार्गों से होने वाला व्यापार कितना महत्वपूर्ण था। कभी–कभी तो, ये स्रोत देश के विभिन्न क्षेत्रों के बीच होने वाले अंतर्राज्यीय व्यापार को प्रभावित करने वाले कारकों को भी प्रतिबिंबित कर देते थे। सोलहवीं और आरंभिक सत्रहवीं शताब्दी के संबंध में भारत के विदेशी व्यापार से संबंधित व्यापार के मूल्य और मात्रा की सूचना देने के संबंध में स्रोत असमर्थ हैं। तब, इस व्यापार का वस्तु–संयोजन न केवल यह स्पष्ट करता है कि इस व्यापार की प्रकृति कैसी थी, बल्कि इसके अन्य पहलुओं पर भी अच्छा प्रकाश डालता है।

इस संबंध में 1634 की एक डच रिपोर्ट का उल्लेख हो सकता है, जो बताती है कि भारत से परशिया को भेजी गयी एक खेप की कुल कीमत क्या होती थी और उससे कमाया गया लाभ कितना होता था। यद्यपि इस प्रकार की रिपोर्ट प्रत्येक वर्ष के लिये उसी निश्चित समय की प्राप्त नहीं होती हैं। इससे हमारे ज्ञान में पूरी बढ़ोतरी नहीं हो पाती थी। इसलिये, विस्तृत क्षेत्रीय अध्ययन और स्थानीय स्रोतों से मिली जानकारी के उपयोग से ही एक सुस्पष्ट समझ विकसित होती है। ऐसे अध्ययन व्यवसायीकरण की क्षेत्रीय प्रवृत्तियों को स्पष्ट करते हैं और मध्यकालीन भारत में आर्थिक वृद्धि के सामान्य स्वरूप को समझने में हमें मदद करते है।

इन स्रोतों को 19वीं एवं 20वीं शताब्दी के विद्वानों द्वारा बड़ी संख्या में प्रकाशित कराये गये ऐतिहासिक भौगोलिक आँकड़ों के संकलन से मदद मिली है। हालिया क्षेत्रीय अध्ययन इस क्षेत्र में रूचि बढ़ाने में प्रोत्साहित करते हैं, जो भारत की अतीत में हुई आर्थिक प्रगति के स्पष्ट चित्र को सामने रखते हैं। विश्व इतिहास लेखन पर विस्तृत प्रकाशनों ने भारत पर औपनिवेशवाद द्वारा विजय प्राप्त करने से पूर्व भारत की सामाजिक–आर्थिक विकास का सही संज्ञान लेने में और मदद की।

7.3 मुगल शासकों के आधीन आंतरिक व्यापार

मुगल शासन के अंतर्गत आंतरिक व्यापार की शुरुआत ग्राम्य–स्तर से हुई, जहाँ पर कृषि उत्पाद के अधिशेष को राजस्व की प्राप्ति हेतु धनराशि के बदले बेचने का चलन शुरू हुआ। अनाज खरीद के पारम्परिक व्यवसायी, इस अधिशेष का बड़ा हिस्सा खरीद लेते थे, और उसको अन्य शहरों और बाजारों में बेच देते थे। बाजार बड़े–बड़े गांवों में या छोटे शहरों/कस्बों में लगते थे, या तो रोजमर्रा की जरूरत की चीजों की पूर्ति बनाये रखने के लिये, या समय–समय पर विशेष वस्तुओं की पूर्ति के लिये। ये छोटी–छोटी बाजारें स्थानीय

होते हुए भी क्षेत्र की बड़ी बाजारों से जुड़ी रहती थी। ये केन्द्र अंतर्क्षेत्रीय मण्डी के रूप में विदेशी व्यापार के लिये भी प्रयोग में आते थे। उनके पास टकसाल भी थी जहाँ स्वर्ण, चाँदी और ताँबे के सिक्के ढलते थे।

इस प्रकार, आंतरिक व्यापार मुगल शासन में तीन स्तरों पर होता था–

1) स्थानीय और क्षेत्रीय व्यापार
2) अंतक्षेत्रीय व्यापार
3) अंतरस्थलीय/विदेशी व्यापार

7.3.1 आंतरिक कारवाँ मार्ग

आंतरिक व्यापार मार्ग

मुगल शासन में, भारत में विभिन्न क्षेत्रों के मध्य व्यापार, बहुत विकसित था, और समय साध्य और लाने–ले जाने पर आने वाली कीमत के अधिकतम होते हुए भी उच्चस्थ दर्जे का था। विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ क्षेत्रों में व्यापार हेतु लाई जाती थी। पूर्व में, बंगाल व्यवसाय और विपणन का प्रमुख केंद्र था। इसके देश के विभिन्न अधिकांश भागों के साथ अत्यधिक विकसित व्यापारिक संबंध थे। ढाका, हिजली, हुगली, मालदा, मुर्शिदाबाद, सटगाँव, सोनारगाँव और श्रीपुर मुख्य व्यापारिक केन्द्र थे। बिहार, उड़ीसा, गुजरात, और कश्मीर से बंगाल तक से विभिन्न उत्पादों को लाया जाता था। आगरा, बनारस और उत्तरी भारत के अन्य शहरों से भी बंगाल के व्यावसायिक संबंध थे।

पश्चिमी क्षेत्र में, अहमदाबाद और सूरत सबसे बड़े व्यवसायिक केन्द्र थे। गुजरात को मसालों की पूर्ति मालाबार तट से हुआ करती थी। गुजरात से बड़े पैमाने पर व्यापार कोंकण और मालाबार शहरों तक किया जाता था। उत्तरी क्षेत्र में, भारत में मुगल शासन के अंतर्गत, पंजाब से होते हुए विशद स्थलीय मार्गों से अंतरस्थलीय व्यापार होता था। आगरा को बड़ी मात्रा में बंगाल से रेशम प्राप्त होता था, राजस्थान से प्रसिद्ध संगमरमर और देश के अन्य भागों से वस्तुएँ प्राप्त होती थीं। दक्षिण भारत से अधिकतर व्यापार तटीय मार्गों से होता था। गोलकुण्डा की खदानों से हीरे, भारत के सभी हिस्सों में व्यापार के लिये भेजे जाते थे। अच्छी किस्म का लोहा ढाका और दक्षिण भारत में बनाया जाता था। खनिज और धातुओं का उत्पादन देश के जिस भी क्षेत्र में होता था, उसे अन्य क्षेत्रों में व्यापार हेतु ले जाया जाता था। मुगल साम्राज्य में व्यापारिक मार्गों का एक विस्तृत संजाल था जो व्यवसाय के प्रमुख बड़े केन्द्रों से जुड़ा हुआ था। सभी व्यावसायिक भागों में प्रमुख मार्गों पर थोड़ी–थोड़ी दूरी पर सराय हुआ करती थीं, जिन मार्गों पर आवागमन अधिक होता था, उनमें मीनारें हुआ करती थीं, 'कोसमीनार' जो तय की गई दूरी की सूचना देती थीं। महत्व के कुछ व्यापारिक मार्गों की सूची नीचे दी जा रही है:

- **आगरा से दिल्ली** का मार्ग जो **काबुल** से जुड़ा थाः यह मार्ग सोनीपत, पानीपत, करनाल, अम्बाला, लुधियाना, फतेहपुर, लाहौर, रावलपिंडी, पेशावर और काबुल से होता हुआ गुजरता था।
- **आगरा से बुरहानपुर** का मार्ग जो **सूरत** से जुडा थाः यह मार्ग धौलपुर, ग्वालियर, नरवर, बुरहानपुर, नंदूरवार (नंदरबार), किरका और सूरत से होकर गुजरता था।

- **सूरत से अहमदाबाद** जो **आगरा** को जोड़ता थाः यह मार्ग भरुच, बड़ौदा, अहमदाबाद, पालनपुर, जालौर, मेड़ता, हिन्डन, फतेहपुर सीकरी और आगरा होकर गुजरता था।
- **आगरा से पटना** जो **बंगाल** से जुड़ा थाः यह मार्ग फिरोजाबाद, इटावा, सराय शाहजादा, इलाहाबाद, बनारस, दाउद नगर, पटना, मुंगेर, भागलपुर राजमहल और ढाका से होकर गुजरता था।

वाणिज्य और व्यावसायिक मार्गों पर परिवहन के साधन, बोझ उठाने वाले पशुओं और नदी जल मार्गों में चलने वाली नावों से बने थे। बैलों से जुड़ी गाड़ियाँ और ऊंट स्थल मार्गों पर वस्तुओं को ले जाये जाने के लिये उपयोग किये जाते थे। मानव–श्रम भी अक्सर उपयोग में लाया जाता था। नदी मार्गों पर, विभिन्न प्रकार की नावों का प्रयोग महाद्वीप में विभिन्न क्षेत्रों को जोड़ने में किया जाता था। पानी के बहाव की दिशा में परिवहन आसान होने से वस्तुओं को लाने ले जाने में समय कम लगता था। इस प्रकार से किया जाने वाला यातायात कम खर्चीला भी होता था।

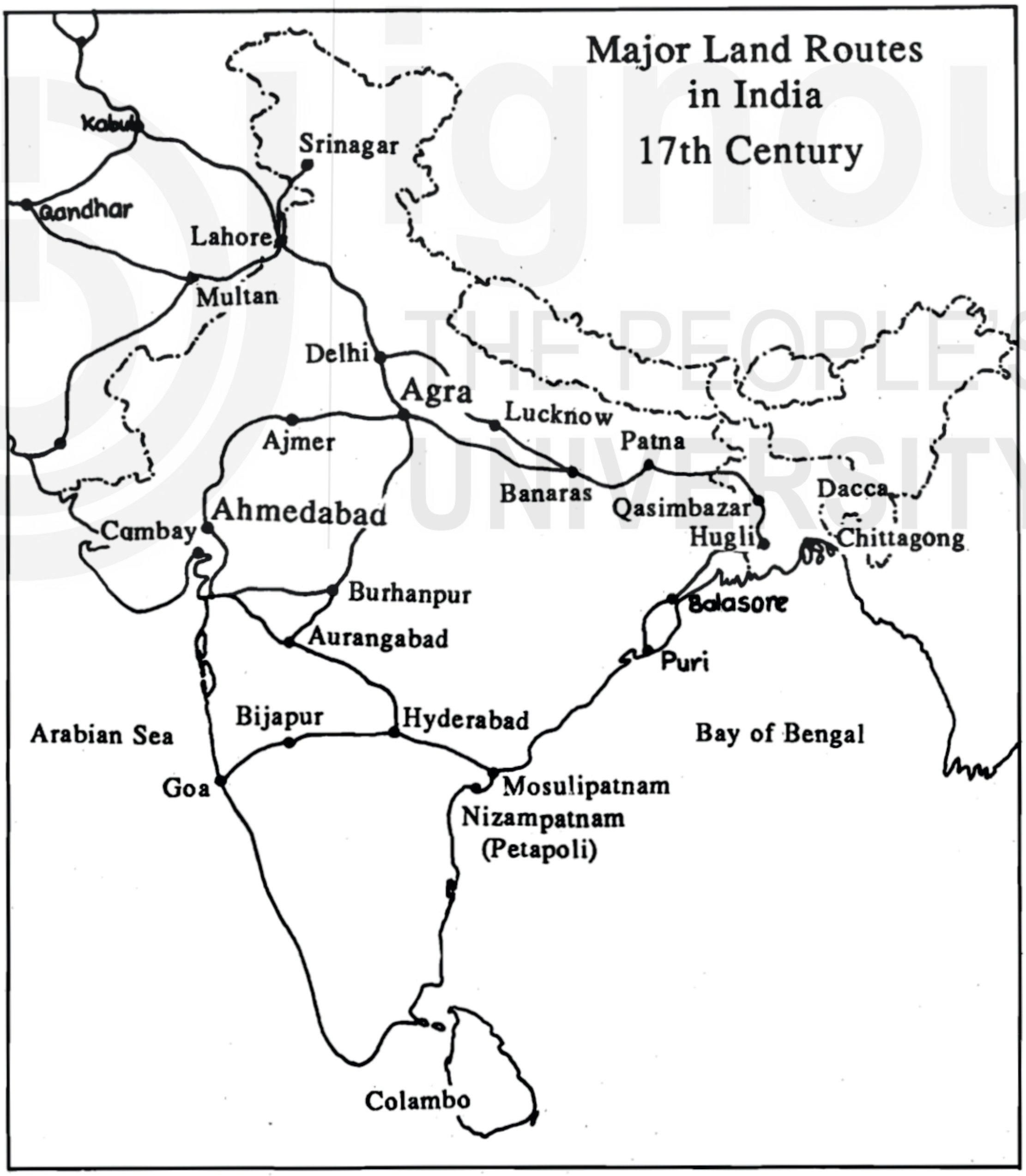

नक्शा 7.1ः सत्रहवीं शताब्दी भारत मे विभिन्न स्थल मार्ग 1 स्रोतः ई एच आई, ब्लाक 6, इकाई 23, pp. 31

7.3.2 अंतरस्थलीय कारवाँ मार्ग

अतीत काल से भारत पड़ौसी क्षेत्रों से व्यापार करता रहा था। भारत का विदेशी व्यापार सत्रहवीं शताब्दी के दूसरे अर्धभाग तक, जब देश में यूरोपीय देशों की उपस्थिति परिमाण में महत्वपूर्ण हो गई थी, फारस की खाड़ी और लाल महासागर में स्थित देशों के जरिये हो रहा था। इस तरह के व्यापार में, जो समय दूरियां तय करने में लगता था, स्पष्टतः व्यापारियों द्वारा किये गये निवेश पर लाभ लम्बा समय व्यतीत हो जाने के बाद ही मिलता था। इसलिये, व्यापार ज्यादा मात्रा में किया जाना आवश्यक होता था ताकि निवेश किये गये धन पर अच्छा लाभ प्राप्त हो सके। इसके अतिरिक्त, भिन्न–भिन्न क्षेत्रों की इस स्थलीय व्यापार पर अलग–अलग स्तर पर पहुँच थी। पूर्वी सीमा पर आने वाले क्षेत्रों की तुलना में महाद्वीप के उत्तर–पश्चिम सीमा पर पड़ने वाले क्षेत्रों की इस व्यापार में भागेदारी अधिक रहती थी। तटीय क्षेत्रों की इन देशों तक पहुंच समुद्र के रास्ते थी। (भारतीय सामुदिक व्यापार संजाल के बारे में आप अगली इकाई 8 में पढ़ेंगे)।

बहुमूल्य धातुओं की कुल कीमत के आधार पर, फारस की खाड़ी के साथ हो रहे व्यापार की तुलना में लाल महासागर के साथ हो रहे व्यापार ने बढ़त ली थी। मोका में दो मुख्य बाजार थे, पहले बाजार में यमन क्षेत्र का लाल महासागर का अफ्रीकी तट और हाद्रामौत तट का सामान बिकता था। दूसरी हज तीर्थयात्रियों की जरूरतों को पूरा करने वाला बाज़ार था। स्थानीय बाजार में तुर्की व्यापारियों का बाहुल्य था। गुजरात के बनिया लोग भी इस व्यापार में सक्रिय रूप से व्यस्त थे। इनके आढ़तिये अंतरस्थलीय केंद्रों में रखे जाते थे – जैसे सना, बेत–एल–फकीह और टैस, जहां पर स्थलीय व्यापार मार्गों द्वारा बड़ी मात्रा में कपड़ा लाया जाता था। इस प्रकार, अंतरस्थलीय केन्द्र समुद्रीय मार्गों और उन विकल्पों की ओर केन्द्रित थे, जहाँ पर उनको कम मात्रा में कर देना होता था।

अंतरस्थलीय मार्ग सुरक्षा और संरक्षण की दृष्टि से व्यापारियों के लिये अधिक रुचिकर थे। ये मार्ग प्रत्यक्ष रूप से शासक के नियंत्रण में हुआ करते थे, समुद्री मार्गों की अपेक्षा जो कि यूरोपीय कम्पनी की दया पर निर्भर थे। स्थलीय मार्ग, अगर तुलना करें तो राह में आने वाली मुसीबतों से सुरक्षित थे, ठहरने आदि का प्रबन्ध ठीक–ठीक होता था, और अतिरिक्त व्यय भी तुलनात्मक दृष्टि से कम रहता था।

पूरी सत्रहवीं शताब्दी में भारत और ईरान के बीच व्यापारिक संबंध सक्रिय रूप से बने रहे। जैसा कि ट्रेवरनियर ने ठीक ही कहा कि स्थलीय मार्गों के द्वारा व्यापार करने के लिये व्यवसायी ज्यादा तैयार रहते थे, और हमेशा उसी को पसंद करते थे।

यद्यपि कि गोमब्रून[2] पर जहाज लेना बहुत आसान होता है, फिर भी अनेक व्यवसाय ऐसे होते है जो स्थलीय मार्ग का चयन करते हैं, और इसी के रास्ते भारत में बना सुन्दरतम कपड़ा आया करता है।

यूरोपीय कम्पनियों से बढ़ रहे झगड़े और उनके द्वारा एशिया के व्यापारियों का हिस्सा कम करने के लिये किये जा रहे उपायों की वजह से व्यापारी 1630 तक स्थलमार्ग को प्राथमिकता देते थे।

---

[2] गोमब्रून परशियन खाड़ी का बड़े बन्दरगाहों में से एक है, जहाँ भारत के जहाज आकर व्यापार करते थे। बसरा एक अन्य बन्दरगाह है जहाँ बड़ी मात्रा में व्यापार संचालित होता था।

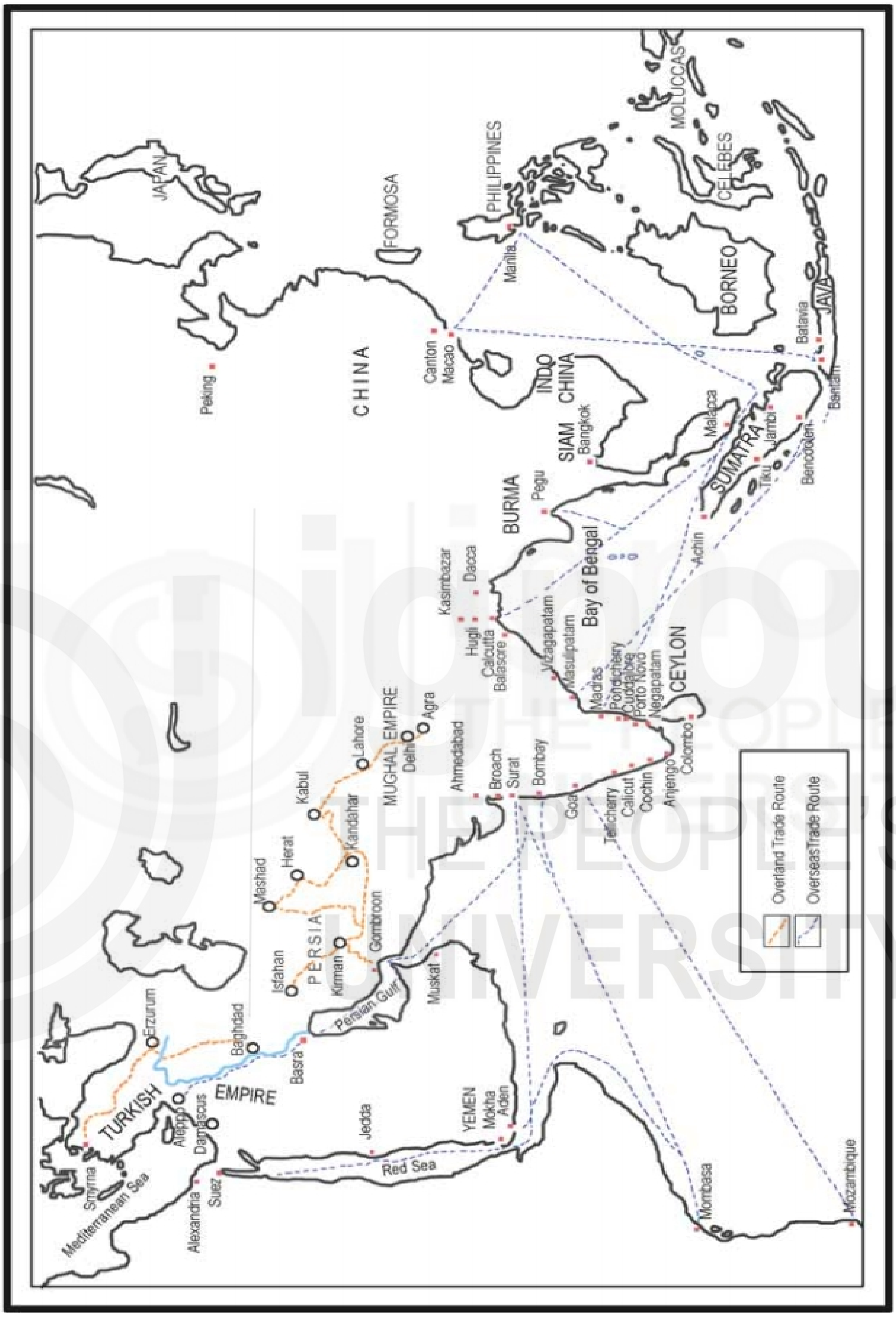

नक्शा 7.2 अंतरदेशीय और समुद्री व्यापार मार्ग 17वीं एवं 18वीं शताब्दी

स्रोतः एम.एच.आई. 05, इग्नू

मध्य एशिया का मुख्य भू–भाग खैबर और बोलन दर्रों से होकर खुलता था। इन रास्तों पर लाहौर, मुल्तान, काबुल और कन्धार मुख्य प्रवेश द्वार थे। इन मुख्य व्यापारिक मार्गों पर बहुत सी छोटी धमनियों जैसे रास्तों की मिलने की जगह हुआ करती थीं, जो मुख्य मार्ग को अपने

विशेष गुण के कारण सहायता प्रदान करती थीं। लद्दाख से मार्ग तिब्बत, चीन और भारत से निकले मार्ग कासगर से जुड़ते थे जो काश्मीर से निकले मार्गों से होते हुए कराकोरम और यारकन्द तक पहुँचते थे। काशगर से कारवाँ[3] समरकन्द और बुखारा को निकलते थे।

व्यापार के लिये सबसे महत्वपूर्ण मार्ग आगरा से लाहौर का था, जिसमें बीच–बीच में रूकने के स्थान दिल्ली, सिरहिन्द, पानीपत, और समाना थे। एक अन्य मार्ग जो अत्यंत महत्वपूर्ण था, वह कश्मीर को लाहौर से मिलाता था। व्यापारियों के दल जो नियमित रूप से लाहौर में एकत्रित होते थे, जहां वे कन्धार जाने के लिये, और काबुल भी बहुत अच्छी तरह से जुड़ा हुआ था जहाँ से मध्य एशिया के बाजारों की वस्तुएं आती थीं।

कन्धार परशिया से भारत के मुख्य मार्ग पर सामरिक इलाके में स्थित है। यह परशिया, भारत और मध्य एशिया से आने वाले व्यापारियों के लिये मिलन–बिन्दु भी था। सत्रहवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में मुगलों और सफाविदों के बीच कई लड़ाईयां इस मार्ग पर अधिपत्य जमाने के लिये हुई। थेवोनोट के अनुसार इस व्यापार मार्ग से मुगलों को 16–17 करोड़ रूपये प्रति वर्ष की आय होती थी।

कन्धार से एक ओर पंजाब और सिन्ध काफी करीब पड़ते हैं, तो दूसरी ओर दिल्ली और आगरा। सिन्ध नदी में रेत के घसकने से जहाँ दिल्ली और आगरा के लिये सामग्री का परिवहन महंगा पड़ता था, वहीं पंजाब और सिंध के लिये सामान ले जाना ज्यादा आसान होता था।

मध्यकाल में व्यापार के लिये सर्वाधिक प्रयोग किये जाने वाला स्थलीय मार्ग, महान सिल्क मार्ग था, जो चाइना से आरंभ होकर मध्य एशिया होते हुए, काशगर, समरकन्द और बाल्ख और काबुल तक जाता था। यह मार्ग लाहौर में भारतीय अन्दरूनी इलाकों से जुड़ा था। फरात के पार यह एलप्पो तक जाता था, जहाँ से वस्तुओं को जहाजों द्वारा यूरोप ले जाया जाता था।

7.3.3 व्यापारी, व्यापार हेतु वस्तुएँ और उनका बाज़ार

भारतीय व्यापारी तत्कालीन एशिया के व्यापार में एक केन्द्रीय भूमिका में थे। यद्यपि इस व्यापार का अधिकांश परिमाण समुद्री परिवहन के रास्ते ले जाया जाता था, फिर भी बहुत सा सामान अंतरस्थलीय मार्ग से भी जाता था। नियमित व्यवसायी सामान को लाहौर, काबुल, मुल्तान और कान्धार जैसे मुख्य केन्द्रों व्यापार संचालित होता था। परशिया से और अन्य मध्य–पूर्व देशों से, वस्तुओं को नियमित रूप से आदान–प्रदान किया जाता था। आप इन लोगों द्वारा अपनाई गई विभिन्न व्यवसायिक रीतियों और बहुत से व्यवसायिक समाजों के बारे में इकाई 9 में अध्ययन करेंगे।

मुगल साम्राज्य के उत्तर पश्चिमी इलाकों के व्यापारी सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में इस व्यापार में हावी रहे। भारत में मुगलों की ताकत बढ़ते समय खत्री समाज के लोग इस व्यापार में अपनी विशेष उपस्थिति दर्ज करा रहे थे।[4] जैसाकि पहले बताया गया, यूरोपीय शक्तियों

---

[3] मुल्तानी व्यापार में सबसे अधिक क्रियाशील वर्ग जो समरकन्द में वाणिज्यिक गतिविधियाँ चलाते थे। 1326 के आसपास, भारतीय इस क्षेत्र में दौरा करने वाले अहम मेहमान थे, ऐसा उल्लेख किया गया हैं। 15वीं शताब्दी में, इस क्षेत्र में खरीद–फरोख्त के दस्तावेजों में भारतीयों का नाम मिलता है।

[4] उनके अग्रगामी हिन्दू मुलतानी थे। 19वीं सदी के अंत के लगभग महाद्वीप के सभी क्षेत्रों के व्यवसायी इस व्यापार में हिस्सा लेने लगे थे। इनमें दक्खनी व्यवसायी भी थे काबुल और पेशावर में। बहुत से ईरानी व्यापारी भी दक्खनी के दरबारों में दिखाई दे जाते थे।

के समुद्री मार्गों पर बढ़ते नियंत्रण के चलते, स्थलीय मार्गों पर कारवाँ व्यवसाय में विविधता आयी और फैलाव बढ़ता गया। बोझा ढोने वाले जानवर सामान लाने ले जाने के मुख्य साधन हो गये। उनको रोज आराम करने के लिये लदे सामान को उतारा जाता। अंतरस्थलीय मार्गों से व्यापार को इतनी महता प्राप्त हो गई कि इस दौरान 1688 में आरमेनियन लोगों और अंग्रेजों के बीच एक समझौता हुआ, जिसमें आरमेनियन लोगों से कहा गया कि वे भारतीय सामानों को स्थलीय व्यापार मार्ग से लाने की प्रक्रिया को छोड़ने का प्रण करें और उनको स्थल के बजाय कम्पनी के जहाजों से भेजें।

व्यवसायी गण सुरक्षा की दृष्टि से और बचाव के लिये स्थल मार्ग से कारवाँ में यात्रा करना पसन्द करते थे, क्योंकि कारवाँ का नेता चुंगी और कर के बारे में, व्यापारियों का ध्यान रखता था, अन्य बातों के अलावा कर्मचारियों के साथ होने वाले मसलों में और छुटपुट व्यवधानों को निपटाता था। कारवाँ के प्रमुख या कारवाँ के नेता के अलावा, एक और महत्वपूर्ण व्यापारी होता था, कारवाँ–बाची जो व्यवसाइयों के बीच यात्रा के दौरान हो जाने वाले किसी भी झगड़े को निपटाने का काम करता था। कारवाँ–बाची पूरे कारवाँ के लिये महत्वपूर्ण निर्णय लेता था जैसे कि रात में ठहरने के लिये जगह का चुनाव करना, और अन्य कई छोटी–छोटी जिम्मेदारियों को निभाना। आरमेनियन और बनिये जैसे सौदागर स्वभाव से ही मितव्ययी होते थे, और सामान्यतया अपनी सभी व्यवस्थायें करके चलते थे।

कारवां सराय देश भर में प्रतिष्ठित लोग द्वारा बनाई गई थीं। ऐसी बहुत ही कम जगहें थीं जहाँ सराय न बनाई गई हो। इन सरायों के आकार शहर के महत्व के आधार पर भिन्न–भिन्न होते थे, इसमें ठहरने वाले कारवाँ की संख्या और कितना इनका उपयोग होता होगा, इस पर भी निर्भर करता था। इस्फाहान की कारवाँ सराय के लिये, ट्रेवरनियर ने व्यापारियों को सलाह दी कि ऊपर की मंजिलों में कमरे लें क्योंकि उनका किराया भूतल से तीन गुना सस्ता होता था। कभी–कभी तो घोड़ों के लिये अलग से घुड़साल बनाई जाती ताकि उनको ठीक से छत और स्थान सुलभ हो सके। न केवल सामरिक रूप से महत्वपूर्ण शहर अपनी सरहदों में आने से कारवाँ से आय प्राप्त करते थे, बल्कि इस दौरान उनकी ठहरने की अवधि में उनके द्वारा उपयोग की गई वस्तुओं से भी उनको आय प्राप्त होती थी।

कुछ भारतीय व्यवसायी अपने साथ अपने देश से सिद्धहस्त बुनकर लाये और उनको पड़ौसी क्षेत्रों में जैसे समरकंद में बस जाने के लिये प्रोत्साहित भी किया। बनियों के अतिरिक्त, आरमेनिया और फारस के व्यापारी भी इस व्यापार में शामिल थे जो परशिया से भारत तक होता था। अन्य जो इसमें शामिल हुए वे अफगान, बारकीज, हजारा, इमाकिस, खुरासानी, मुल्तानी, ताजिक और उजबेक थे। इन व्यवसायिक समूहों के अतिरिक्त, ग्रामीण घुमन्तू (जिनको पोविन्दा भी कहा जाता था) लोगों ने भी इस क्षेत्र में व्यापार को फैलाया।

आरमेनिया के व्यापारी अपनी किफायत और व्यापार कुशलता के लिये पूरे विश्व में जाने जाते थे, उनका व्यापार नेटवर्क बहुत संघटित था। अंतर्देशीय व्यापार मार्गों पर सभी पारगमन बिन्दुओं पर उनके बसासट के निशान मिलते हैं। उन्होंने यात्रा के समय समूह में रह कर खर्च में बचत की जिससे यात्रा में होने वाले अतिरिक्त व्यय में कमी की जा सके। जॉन फ्राइर ने उनकी इस क्षमता का जिक्र किया हैः

... जहाँ भी वो गये अपनी मोल–तोल की क्षमता में माहिर, उन्होंने दलाली से अपना बचाव किया, और मितव्यपिता के सभी तरीकों का अध्ययन कर यात्रा में जहाँ 50 थोमंड से काम चलता वहां वह केवल 50 शिलिंग ही व्यय करते।

सभी व्यापारिक समूहों (समाजों) के लिये अपना स्थान बनाये रखना और अधिकारियों और जनता का विश्वास भी बनाये रखना मुश्किल होता था, ताकि उनका व्यापार तरक्की कर सकें। उनको न केवल शासन करने वाले लोगों का सद्भाव जीतना होता था, बल्कि उनको अपने लिये दूर दराज क्षेत्रों में स्वशासी संगठन बनाने का प्रयास भी करना होता था। परिणामस्वरूप वे अपने लिये अलग रहने की व्यवस्था करते और अपनी वाणिज्यिक समस्याओं और उत्तराधिकार के मसले भी अपनी प्रथाओं और सामाजिक नियमों के अनुसार ही निपटा लेते।

व्यापार से संबंधित वस्तुएं और बाजार

जैसा कि ऊपर बताया गया है, मुगल अर्थव्यवस्था अधिकाशंतः कृषि आधारित व्यवस्था थी। इसलिये, मुगल व्यापार में अनाज ही महत्वपूर्ण था। उसके बाद आने वाली वस्तु सूती कपड़ा था। बेहतरीन किस्म में सूत का कपड़ा, ढाका की उत्कृष्ट मलमल, गुजरात में निर्मित उल्लेखनीय स्वर्ण कशीदाकारी, सामान्य किस्म का सूती कपड़ा, देश के भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में विभिन्न दरों पर व्यापार के लिये रखे जाते थे।

उपभोग की तैयार वस्तुओं के अतिरिक्त, दरमियानी वस्तुओं और कच्चे माल का भी व्यापार किया जाता था। जो क्षेत्र किन्हीं खनिजों एवं धातुओं में भरपूर होते थे, वे दूसरे क्षेत्र की, जहाँ विशेष निर्माण इकाइयां लगी हुई थीं, मांग पूरा करते थे। इस प्रक्रिया ने एक पूरा जाल ही तैयार कर दिया था। जहाँ अलग–अलग क्षेत्र उत्पादन और आपूर्ति की वजह से एक दूसरे पर निर्भर हो गये थे। एक दूजे पर आश्रित होने का एक उदाहरण बंगाल और गुजरात का दिया जा सकता है। कच्चा रेशम का धागा बंगाल से गुजरात को ले जाया जाता, जो स्थलीय और जलमार्ग से जाता, वहाँ की फलती–फूलती रेशम उद्योग की आवश्यकता की पूर्ति के लिये। बदले में, गुजरात बंगाल की फलती–फूलती सूती कपड़ा उद्योग की आवश्यकता हेतु कपास की आपूर्ति करता था।

क्षेत्रीय स्तर पर एक–दूसरे पर निर्भरता बहुत गहन थी, यह देखते हुए कि माल ढुलाई की लागत की अधिकता, और लागू करों का बोझ भी था। एशिया के व्यापार की प्रकृति को जेकब वान लेडर ने अपनी पुस्तक में छुट पुट बिक्री का नाम दिया है और यह एशिया के व्यापक और विविधतापूर्ण व्यापार को विवेचित नहीं कर सकता है (1955: 63–69)।

अहमदाबाद और आगरा में उत्पादित किया जाने वाला नील एक अन्य उत्पाद था, जो मुगल भारत में दूर–दूर तक भेजा जाता था। इसका उपयोग कपड़ा निर्मित करने में किया जाता था।

मुख्यतः निर्यात की जाने वाली जिंस (उत्पाद) जो भारत से मध्य एशिया तक भेजी जाती थी, वह विभिन्न किस्मों के कपड़े थे। अन्य वस्तुओं को, जिनका व्यापार किया जाता था, उनमें मसाले, चीनी, बहुमूल्य रत्न और साथ ही घोड़े थे। मध्य एशिया से आयात की जाने वाली वस्तुएं मुख्यतः घोड़े, सूखे मेवे, ताजे फल, ऊन, मूंगा, बाज और कस्तूरी थी। मुगल बादशाह जहांगीर (1605–1626) समरकन्द से अंगूर और सेब प्राप्त करते थे। सत्रहवीं शताब्दी के दूसरे भाग में, बरनीयर बताते हैं कि मध्य एशिया के फलों का व्यापार दक्खन तक होता था। भारत के लिये घोड़ा का आयात आरम्भिक मध्य युग से ही होने लगा था। घोड़ों का व्यापार मध्यकाल में बराबर फायदे का सौदा बना रहा। बाबर के अनुसार, 16वीं शताब्दी में सात से

दस हजार घोड़ों का प्रति वर्ष आयात काबुल में होता था। इस व्यापार में गिरावट उन्नीसवीं सदी में आई।

भारतीय इतिहास के इस काल के दौरान पड़ोसी देशों के साथ होने वाले व्यापार में जिंस की एक लम्बी फेहरिस्त उपलब्ध है। दिल्ली की कशीदाकारी, मिर्च–मसाले, मसूलीपटनम, बंगाल का सूती कपड़ा और सयाना की शक्कर, लाहौरी नील, लोकप्रिय वस्तुएं थी, जो आगरा लाहौर मार्ग से यूरोप जाया करती थीं, लाहौरी व्यवसायी लोग भी सामान लेकर काश्मीर से लाहौर पहुंचने लगे, विशेष कर शाल के साथ।

पुर्तगाल द्वारा लोहे, ताँबे और स्टील के परिवहन पर समुद्री रास्ते से व्यापार पर प्रतिबंध लगाये जाने के बाद, इन जिंसों की ढुलाई परशिया तक स्थलीय रास्ते से होने लगी। तम्बाकू एक और जिंस थी जिसका व्यापार बहुत बड़ी मात्रा में होता था। कहा जाता है कि व्यापार का संतुलन भारत के हित में होता था। परिस्थिति यह थी कि परशिया से बहुत अधिक निर्यात भारत को नहीं हो पाता था। केवल विलासिता की वस्तुएँ, रत्नों आदि का आयात ही भारत में होता था (ट्रेवरनियरः 218)। ब्राडक्लाथ– एक प्रकार के कपड़ा का आयात बड़ी मात्रा में आगरा, दिल्ली और लाहौर की बाजारों के लिये हुआ करता था।

आयात की जाने वाली जिन्सों में घोड़े, कॉफी, गुलाबजल और हाथी के दांत होते थे। बहुमूल्य धातुओं का आयात महत्वपूर्ण वस्तु के रूप में होता था, चांदी, रियाल और डुकट रूपये। इनमें से अधिकांश सिक्के यूरोप से आते थे, जो लाल सागर और पारस की खाड़ी से आते थे। यूरोप को चांदी की आपूर्ति नई दुनिया से होती थी। चाँदी का घरेलू उत्पादन नहीं के बराबर था, इस चाँदी के सिक्कों ने मुगल भारत की अर्थव्यवस्था को चलाये रखा।

7.3.4 व्यापार, वाणिज्य और राज्य

व्यापार राज्य की राजस्व की प्राप्ति का प्रमुख एवं महत्वपूर्ण स्रोत था। राज्य का आवश्यक उत्तरदायित्व व्यवसाय की सुरक्षा करना भी था। विभिन्न दरबारों के राजे–महाराजे और देश इस बात को आवश्यक समझते थे कि आपस में मनमुटाव होने के बाद भी व्यापारिक स्थलीय मार्गों में सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिये। राजनीति और व्यापार के मध्य आपस में नजदीकी संबंध हुआ करते थे। मुगल शंहशाहों और परशिया और उजबेक शासकों के बीच व्यापारियों के माध्यम से पत्रों का आदान–प्रदान होता था।

राज्य सरकारों/अधिकारियों ने बढ़ते हुए व्यापार को देखते हुए सुविधायें प्रदान करने के प्रयास करने शुरू किये। शेरशाह सूरी द्वारा सड़क निर्माण का वृहत कार्य किया जाना इसका एक उदाहरण है। उसने आगरा और बुरहानपुर के बीच सड़क बनवाई, दूसरी सड़क आगरा से जोधपुर और चितौड़ तक बनवाई। लाहौर से मुलतान तक सड़क पर उसने बहुत से आरामगाह बनवाये। काबुल को जाने वाली सड़क पर दोनों ओर कई शहर पनपे। व्यापारिक मार्गों पर बढ़ती गतिविधियों ने शहर की आन्तरिक आर्थिक प्रगति को भी सहयोग दिया।

व्यापारियों का भविष्य, उनका लाभ, इन शहरों और इनकी शासन व्यवस्था पर बहुत गहराई से निर्भर था। हमें यह ध्यान में रखना चाहिये कि न केवल शासक वर्ग व्यापार को सुरक्षा प्रदान करते थे, बल्कि विलासिता से जुड़ी वस्तुओं की माँग भी बहुतायत से इसी वर्ग से आती थी। यह मांग बाजार में उपलब्ध कृषि आमदनी से अधिशेष की उगाही से ही संभव था। दूसरी ओर, शासक वर्ग के अभिजात्य लोग भी व्यापार में संलग्न रहते थे। यह दो तरफा संबंध था

औरंगजेब, जब युवराज था, उसने सिंध क्षेत्र में अपना एक बन्दरगाह बनाने का प्रयास किया था। इसी प्रकार, मुगल शासन के बहुत से सम्मानित दरबारियों का नाम व्यापारियों के रूप में दर्ज था, जो स्वयं इस वर्ग में शामिल थे, या जो व्यवसायिक परिवारों से आते थे।

कराधान / करारोपण

कुछ जिन्सों का महत्व साम्राज्य के लिये इस कारण बढ़ गया कि उन पर कर लगा दिया गया। जिन्सों पर लगाये गये विभिन्न प्रकार की सीमा शुल्क की दरें, जिन्स के महत्वपूर्ण होने की स्थिति स्पष्ट करती थीं। उदहारण के तौर पर, मुगल काल में सिक्कों के चलन के लिये बहुमूल्य धातुओं पर जिनका नियमित आयात विशेष रूप से महत्वपूर्ण था। जबकि दूसरी ओर, साधारण व्यापार की वस्तुएँ जिनको 3.5 प्रतिशत तक सीमा शुल्क अदा करना होता था, वहीं बहुमूल्य धातुओं पर यह शुल्क केवल 2 प्रतिशत था (प्रकाश, 1981ः 177)।

मुगल शासन के अंतर्गत नियमित रूप से कराधान की नीति बदलती रहती थी। बादशाह जहांगीर ने काबुल और कंधार से किये जाने वाले व्यापार पर सीमा शुल्क समाप्त कर दिया था, या माफ कर दिया गया था। शासक के आदेशों के अनुसार व्यापारियों पर लागू करारोपण की नीति बहुत आसान दिखाई देती थी। जबकि, वास्तव में उपलब्ध दस्तावेजों से पता चलता है कि व्यापारियों द्वारा स्थानीय कर्मचारियों के उत्पीड़क स्वभाव का सामना करना पड़ता था। हमें ऐसी बहुत सी याचिकायें और शिकायतें मिली हैं जो व्यक्तिगत रूप से व्यापारियों ने, व्यापारिक समाजों ने, और विदेश व्यापार कंपनी ने की हैं, जिनमें कर्मचारियों की ज्यादती और मनमानी की शिकायतें हैं।

इन सब कठिनाइयों के बावजूद, व्यापार में वृद्धि होती गई और इस उपमहाद्वीप ने अनेकों देशों के व्यापारियों को आकर्षित किया।

प्रशासनिक पद

अन्य जिम्मेदारियों के अलावा, शासक व्यापार मार्गों को सुरक्षित रखने के लिये भी उत्तरदायी होते थे। लूट या डकैती पड़ने की स्थितियों में प्रान्त के सूबेदार इसके लिये उत्तरदायी ठहटाये जाते थे। शासक को सूचना मिलनी चाहिये थी कि प्रान्त में व्यापारियों के कारवाँ आ गये हैं। व्यापार–मार्गों को सुरक्षित बनाये रखने के लिये विशेष नियुक्तियाँ की जाती थीं। ये नियुक्तियाँ स्थलीय मार्गों और अंतर्देशीय मार्गों पर होनी थीं। उदाहरण के लिये, मुगल शासकों को लाहौर और मुलतान के बीच पठानों के आक्रमणों से बचाव के लिये कारवाँ की सुरक्षा हेतु 23 सभ्रांतों को नियुक्त करना पड़ा।

व्यापारी वर्ग शासकों को सहयोगी की तरह मानते थे। उदाहरण के लिये, खत्री व्यापारियों का मुगल प्रशासन के साथ बहुत लम्बा सहयोग रहा। उन्होंने मुगल राज में बहुत से पदों पर काम किया, अमीर के पद से लेकर जो सूबे में उच्च पद से लेकर स्थानीय कर्मचारियों तक होते थे, निम्नतम कर्मचारियों (मुसतद्दी) तक जो राजस्व विभाग में हुआ करते थे।

7.4 अवध का केस–अध्ययन

16वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में वाणिज्य और व्यापार में विस्तार आने के कारण, यात्रायें अधिक संख्या में और गति से होने लगी। इस कारण सुविधाओं की माँग बढ़ने लगी जैसे कि सराय

आदि। यात्रा वृत्तांतों में लिखित कुछ सराय सुरक्षित रह गयी हैं। मध्यकालीन भारत में जहाँ पर जनसंख्या का घनत्व अधिक था, बड़ी संख्या में सराय स्थापित की गई थीं। ये अधिकतर अलीगढ़, प्रतापगढ़, पटरी, सम्भल, सिकन्दरा और सोराअन में थीं।

ये सराय इन क्षेत्रों में महत्वपूर्ण व्यापारिक मार्गों जैसे आगरा से बनारस, दिल्ली से फैजाबाद होते हुए अवध, दिल्ली से अलीगढ़ होते हुए आगरा और खीरी से फैजाबाद के मुख्य स्थलों पर थीं। खीरी से फैजाबाद महत्वपूर्ण कपास उत्पादन यहीं से गुजरता था। कपास और सूत का व्यापार खीरी और फैजाबाद को इलाहाबाद से मुख्य सड़क से जोड़ता था। सरायों की संख्या में जो कमी या अधिकता वैकल्पिक मार्गों पर दिखती थी, यह स्पष्ट करती थी कि सत्रहवीं सदी के दूसरे भाग में व्यापारिक मार्गों में बदलती प्राथमिकतायें क्या थीं?

कुछ स्थानों पर सरायों की स्थापना उस क्षेत्र में राजनैतिक विकास को परिलक्षित करती थी। उदाहरण के लिये, सादाबाद में तीन सरायों की स्थापना, उनका निर्माण तब हुआ जब शाहजहाँ के वजीर, सदुल्ला खाँ ने वह शहर बसाया। वहीं दूसरी ओर, जहाँ पर दो या तीन सराय थोड़ी–थोड़ी दूरी पर दिख जाती थीं, वो इस बात को इंगित करती थीं कि व्यापारियों को ऐसी सुविधायें मुख्य मार्ग से जोड़ने वाली फीडर सड़कों पर भी दी गई थीं। इस प्रकार की सुविधायें, अलग–अलग सरायें, बाजार और उत्पादन केन्द्रों के रूप में उस क्षेत्र के लोगों की जरूरतें पूरी करने के काम आती थीं।

मुगल शक्ति के शाही केन्द्रों के पतन के साथ, सदी के अन्त तक, नये शहर बस गये। उनमें से कुछ थे, अवध में फैजाबाद, (सआदत खान द्वारा बसाया गया), लखनऊ (नवाब आसुफुद्दौला ने अपनी राजधानी बनाई), फरूर्खाबाद (मोहम्मद खान ने बसाया) और नजीबाबाद (नजीबुद दौला ने बसाया)। शहरों को पुनर्निर्माण कर बसाना या नये शहरों का बसाना इस बात को इंगित करता था कि व्यापार की रफ्तार में परिवर्तन आता रहा था। शाही शहरों के पतन और सेना की चढ़ाइयों में कमी आ जाने के बाद भी, मध्यकालीन भारत में शहरीकरण में वृद्धि के कारक कार्य करते रहे, और इन्हीं कारकों के कारण इस काल में भी शहर फलते–फूलते रहे।

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखियेः

   क) कारवाँ सराय : ....

   ....

   ....

   ख) खत्री लोग : ....

   ....

   ....

   ग) अंतर्देशीय वाणिज्य के अध्ययन के स्रोत : ....

   ....

   ....

द) मुगलों के अंतर्गत प्रमुख आंतरिक व्यापार मार्ग : ....

....

....

2) मुगल साम्राज्य में बड़े अंतरस्थलीय व्यापार मार्गों की सूची बनाइए। इस काल में भारत और मध्य एशिया के बीच व्यापार के प्रमुख जिन्सों के बारे में बताइए।

....

....

....

....

3) मुगल साम्राज्य में व्यापार को विस्तार देने वाले कारकों की व्याख्या कीजिए?

....

....

....

....

4) मुगलों के आधीन व्यापार और राज्य प्रशासन के मध्य संबंधों की चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

7.5 सारांश

सत्रहवीं शताब्दी से पूर्व, उपमहाद्वीप में बहुत से राज्य मौजूद थे; मुगल साम्राज्य से लेकर, मराठा राज्य, जो मध्य और उत्तर भारत में थे, बीजापुर, गोलकुण्डा और विजयनगर दक्षिण भारत में थे। इस काल के पूर्व की अर्थव्यवस्था का इतिहास अपूर्ण रह जायेगा, यदि किसी एक क्षेत्र की चर्चा तक ही सीमित रहा जाये। सत्रहवीं शताब्दी के समाप्त होते–होते, लगभग सारा उपमहाद्वीप मुगल शासन के अंतर्गत आ गया था। भारत की आर्थिक उन्नति हमारे इस अध्ययन के दौरान इस प्रकार, अधिकाशंतः मुगल साम्राज्य के संदर्भ में ही रही। इस शताब्दी के दौरान, यूरोपीय व्यापार भी शुरू हो गया था। अठारहवीं शताब्दी के मध्य के दौरान, यह व्यापार अपने विस्तार के दौर में चला गया, जो समुद्री व्यापारिक मार्गों और स्थलीय व्यापार मार्गों के साथ वाणिज्यिक व्यवस्था और गहन व्यवसायिक ताने–बाने से बढ़ता रहा।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

व्यापार में विस्तार और वित्तीय व्यवस्था में प्रगति के साथ साहूकारों का संबंध जो राजस्व को केन्द्र तक भेजने का कार्य करते थे, आदि कुछ मुख्य विशेषतायें सत्रहवीं शताब्दी में मुगल अर्थनीति में दिखाई थीं। इन विशेषताओं ने अर्थव्यवस्था और व्यापार से संबंधित अर्थसंबंधी पहलुओं को आपस में सम्मिलित कर दिया। व्यापार में सम्भ्रांतों और शासकों की सम्बद्धता उल्लेखनीय रहती थी। जबकि शाही प्रतिनिधि नकदी के हस्तांतरण में लगे रहते थे, वित्तीय लेन–देन अधिकारिक बैंकर्स (साहूकारों) और हुण्डी (बिल्टी) के माध्यम से ही होता रहा।

सोलहवीं से अठारहवीं शताब्दी के काल में, श्रम के सामाजिक विभाजन और कौशल के विकास के साथ व्यापार की प्रगति जो देश में स्थापित हो सकी, वह दशकों तक अपना प्रभाव डालती रही। मुगल साम्राज्य में व्यापार की प्रकृति और अर्थव्यवस्था शताब्दी के अंत तक विघटित हो गई। राज्य का राजस्व तेजी से घटता गया। सिख विद्रोह के अतिरिक्त ग्रामीण और शहरी व्यवधान भी थे। कुछ व्यापारिक समूह पूर्व की ओर प्रवास कर गये, अन्य मुलतान के दक्षिण की ओर चले गये, जबकि कुछ अन्य, अपने व्यापार को संभाले रहे और नये साझेदारों के साथ धीरे–धीरे अपनी पहली स्थिति पर आ गये। इसलिये, सामान्य संकट के बदले, सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में गतिशील अर्थव्यवस्था के प्रमाण उभरने लगे। इस प्रमाण ने मुगल साम्राज्य के पतन के संबंध में चल रही अवधारणाओं का पुनर्मूल्याकन आवश्यक कर दिया।

अठारहवीं शताब्दी के दूसरे भाग तक, उपमहाद्वीप में औपनिवेशिक शासन और उनके आर्थिक क्रियाओं में बाधा डालने का एहसास होने लगा था। यह भारत की अर्थव्यवस्था के लिये एक ऐतिहासिक परिवर्तनकारी बिन्दु साबित हुआ। इसका अनेकों वाणिज्यिक और उत्पादक प्रक्रियाओं पर असर पड़ा।

7.6 शब्दावली

अमल : प्रशासन/कार्य में लागू करना

बग्गल : यह शब्द भारत में मुस्लिम लेखकों ने बनिया समाज के लोगों की पहचान के लिये प्रयोग किया।

बोहरा : गुजरात की व्यापारिक समाज के प्रतिनिधि।

भाईबन्द : भाई।

हुण्डी : बिल्टी। दो प्रकार के पत्र दर्शनी और मुद्दती, उनको जारी करने की प्रकृति उनके नाम से स्वतः ही स्पष्ट होती है।

कारवाँनी : अनाज के व्यापारी जो दो भागों में पुनः बाँटे जाते हैः 'सौदागरन इकारवानी' – ढुलाई वाले व्यापारी और 'सौदागरन–इबाजारी', बजार के व्यापारी।

व्योपारी : व्यापारी।

जकात : सीमा–शुल्क।

7.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) अ) उपभाग 7.2.3 देखें।

   ब) उपभाग 7.2.3 देखें।

   स) उपभाग 7.2 देखें। और

   द) उपभाग 7.2.1 देखें।

2) उपभाग 7.2.2 देखें।

3) उपभाग 7.1 और 7.3 देखें।

4) उपभाग 7.2.4 देखें।

5) उपभाग 7.3 देखें।

7.7 अध्ययन हेतु सुझाव

Alam, Muzaffar. 1994, 'Trade, State Policy and Regional Change: Aspects of Mughal-Uzbek Commercial Relations, *c.* 1550-1750', in *Journal of the Economic and Social History of the Orient,* Vol. 37, No. 3, pp.202-227.

Chandra, Satish. 1959, 'Commercial Activities of the Mughal Emperors during the Seventeenth Century', in *Proceedings of the Indian History Congress*, Vol. 22, pp.264-269.

Chaudhuri, K. N. 1990. *Asia before Europe: Economy and Civilization of the Indian Ocean from the Rise of Islam to 1750.* Cambridge: Cambridge University Press.

Chaudhuri, K. N. 1978. 'Some Reflections on the Town and Country in Mughal India', in *Modern Asian Studies*, Vol. 12, No. I, pp. 77-96.

Chicherov, A.I. 1971, *India: Economic Development in the 16th-18th Centuries: Outline History of Crafts and Trade.* Moscow: Central Department of Oriental Literature.

Moosvi, Shireen. 2008. *People, Taxation and Trade in Mughal India.* Oxford: Oxford University Press.

Prakash, Om. 1981. 'Presidential Address: Some Aspects of Trade in Mughal India', in *Proceedings of the Indian History Congress,* Vol. 42, pp.173-187.

Qaisar, A.J. 1974. 'The Role of Brokers in Medieval India', in *The Indian Historical Review*, Vol. I, No. 2, pp.220-222.

Raychaudhuri, Tapan& Habib, Irfan. ed. 1982. *The Cambridge Economic History of India, Vol. I: c. 1200-1750*, London: Cambridge University Press.

Sources for the Study of Economic History of Medieval Period | Vidya-mitra

https://www.youtube.com/watch?v=88XQIi_wKxE&list=PL_a1TI5CC9RHAweDRQ4pPwiQq4SWXZB1-&index=3

Mughal Empire: Trade and Monetary System | e-Pathshala | MHRD

https://www.youtube.com/watch?v=AIL-adfuybI

Markets and Internal Trade in Mughal India (History of India c.AD 1550-1750) | Vidya-mitra

https://www.youtube.com/watch?v=FWuMZLzhFrM

Early European Trade and Commerce | Vidya-mitra

https://www.youtube.com/watch?v=m8yiyY0g0J4

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 8 हिन्द महासागर व्यापारिक संजाल*

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 हिन्द महासागर का व्यापारिक संजाल

8.3 यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियाँ

8.3.1 पुर्तगाली

8.3.2 अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी

8.3.3 डच ईस्ट इंडिया कम्पनी, वेरेनिगडे ऑस्टिनडिश कोम्पैनी (वी ओ सी)

8.3.4 फ्रांसिसी ईस्ट इंडिया कम्पनी

8.4 सत्रहवीं शताब्दी में व्यापारिक संजाल में बदलाव

8.5 यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियाँ और उपमहाद्वीप की राजनैतिक शक्तियाँ

8.6 यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियाँ और देसी व्यापारिक समूह

8.7 हिन्द महासागर में व्यापार का बदलता स्वरूप

8.8 सारांश

8.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह समझ सकेंगे:

- हिन्द महासागर में व्यापारिक संजाल का स्वरूप;
- हिन्द महासागर में यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों की भूमिका;
- यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों के आगमन से व्यापार का बदलता स्वरूप;
- भारत में राजनीतिक शक्तियों और यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों के बीच संबंध; और
- इस अवधि के दौरान किन विभिन्न वस्तुओं का व्यापार किया जा रहा था।

8.1 प्रस्तावना

हिन्द महासागर के व्यापारिक संजाल में अपनी सामरिक स्थिति के साथ भारत समुद्री संजाल के सबसे महत्वपूर्ण केन्द्रों में से एक बन गया था। भारतीय व्यापारी अपनी उद्यमशीलता के लिए जाने जाते थे और उन्हें एक सुव्यस्थित बैंकिंग प्रणाली की सुविधा प्राप्त थी। मुगल शासन ने शहरीकरण, व्यापार और वाणिज्य के विकास और विनिर्माण क्षेत्रों में योगदान

*डॉ. सोहिनी बसाक, स्वतंत्र शोधकर्ता, नई दिल्ली।

दिया। यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों के आगमन ने व्यापारिक परिपथ में बढ़ते तनाव और प्रतिस्पर्धा को जोड़ा। सोलहवीं, सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी के दौरान भारतीय सामुद्रिक व्यापारिक संजाल लगभग अपरिवर्तित रहा। हालाँकि, सोलहवीं शताब्दी की शुरुआत में यूरोपीय लोगों के एशियाई समुद्रों में आगमन ने पारंपरिक व्यापारिक संजाल में परिवर्तन किया। व्यापारिक संजाल के दो प्रमुख भाग लाल सागर और फारस की खाड़ी और चीन सागर और जापान तक दक्षिण–पूर्व एशिया थे। भारतीय व्यापारियों के संबंध न केवल भारत में बल्कि विदेशी भूमियों में भी मौजूद थे। प्राचीन काल से ही भारतीय व्यापारी दूर–दूर तक जाते थे। ज्यादातर व्यापारियों और वणिकों से युक्त भारतीय प्रवासी दक्षिण–पूर्व एशिया से अफ्रीका तक में पाए गए थे। यहाँ तक कि देश के भीतर भी व्यापारी और व्यवसायी लोगों द्वारा अक्सर व्यक्तिगत और पेशेवर आधार पर गठबंधन बनाए गए थे।

8.2 हिन्द महासागर का व्यापारिक संजाल

हिन्द सागर में वाणिज्यिक यातायात का इतिहास बहुत पुराने अतीत तक जाता है, और उत्पादन और विनिर्माण के विभिन्न केन्द्रों को जोड़ने वाले व्यापार के संजाल सामुद्रिक भारत के पूरे तट पर पाए गऐ हैं। पश्चिम एशिया और दक्षिण–पूर्व एशिया के बीच में अपनी भू–भौतिक स्थिति के सामरिक महत्व के कारण, लम्बी दूरी की वस्तुओं के व्यापार में भारत हमेशा एक बेहतर आर्थिक स्थिति में रहा। विविध फसल उत्पादन के साथ विशाल कृषि परिदृश्य के होने से, उपमहाद्वीप में अत्यधिक प्रतिस्पर्धा वाली कीमतों पर व्यापार योग्य वस्तुओं की एक विस्तृत संख्या को बाजार में लाने की अपार आर्थिक क्षमता थी। इनमें चावल, चीनी और तेल जैसे खाद्य पदार्थों के साथ–साथ कपास और नील जैसे कच्चे माल शामिल थे। इस व्यापार का बड़ा भाग तटीय था। विदेशी व्यापार के लिए आवश्यक जहाजी माल की नियमित आपूर्ति सुनिश्चित करने वाले आंतरिक क्षेत्रों के कारण विनिमय के प्रमुख सामुद्रिक केन्द्रों के आसपास क्षेत्रीय व्यापार के कई केन्द्रों का उद्भव हुआ।

सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी की शुरुआत में, विश्व व्यापार में अरब सागर का योगदान मुख्य रूप से सर्राफा, सोना, मोती, हीरे, काली मिर्च और कुछ हद तक रेशम पर केन्द्रित था (आर. जे. बरेंनडसे, *द इंडियन ओशन वर्ल्ड ऑफ द सेवन्टिथ सेन्चुरी*, एम. ई. शार्प, 2002)। निर्यात व्यापार का यूरोपीय हिस्सा निश्चित रूप से बड़ा था। भारत के वांछीय व्यापार के दो मुख्य संबंध थेः एक चीन और दक्षिण–पूर्व एशियाई देशों से जुड़ा था और दूसरा पश्चिम एशिया और पूर्वी अफ्रीका के बन्दरगाहों से जुड़ा था। कूटो और अन्य समकालीन पुर्तगाली स्रोतों से यह स्पष्ट है कि खम्भात, सूरत और अन्य गुजराती बन्दरगाह, पुर्तगाली कार्टेज के साथ या उनके बिना, अटजेह और लाल सागर के साथ व्यापार से सीधे जुड़े हुए थे। सत्रहवीं शताब्दी में हिन्द महासागर व्यापार के विकास का एक अनिवार्य घटक कोरोमंडल तट और दक्षिण–पूर्व एशिया के बीच व्यापार का क्षेत्र था। यहाँ कोरोमंडल तट का प्रयोग दक्षिण में नागपटनम् से लेकर उत्तर में गंजम तक के भारत के पूर्वी तट के लिए किया गया है।

1511 से पहले मलक्का के सामुद्रिक व्यापार में गुजरातियों द्वारा निभाई गई भूमिका सर्वविदित है, और उस अवधि के दौरान, जिससे हमारा सरोकार है, अटजेह में उनकी उपस्थिति के कई बिखरे हुए संदर्भ हैं (सी. आर. बॉक्सर, ''ए नोट ऑन पोर्चुगिज रिएक्शन्स टु द रिवावल ऑफ द सी स्पाइस ट्रेड एंड द राइज ऑफ अटजेह, 1540–1600'', *जर्नल ऑफ साउथ ईस्ट एशियन हिस्ट्री*, वॉल्यूम–10 नम्बर 3, *इंटरनेशनल ट्रेड एंड पॉलिटिक्स इन साउथ ईस्ट एशिया 1500–1800* (दिसम्बर, 1969)।

गुजरात में निर्मित विभिन्न प्रकार के रेशम जैसे कैमलेट फारस और अरब को निर्यात किये जाते थे। दीव में कालीन और चित्रयवनिका का उत्पादन किया जाता था और कई प्रकार की वस्तुओं के साथ इनका विनिमय किया जाता था। अदन और मक्का से मूंगा, तांबा, पारा, सिंदूर, सीसा, फिटकरी, गुलाबजल, मजीठ (कालमेशी) और केसर भारत में आयात किये जाते थे। भारतीय अर्थव्यवस्था में विनिर्माण क्षेत्र के सबसे महत्वपूर्ण घटक वस्त्र थे। इसमें चित्रित या प्रिन्टिड मोटे सूती वस्त्रों से लेकर सबसे उत्तम ढाका की मलमल और गुजरात के सोने की कढ़ाई वाले वस्त्र थे। गुजरात से मक्का की यात्रा मुस्लिम जहाजों या पाँच सौ से हजार खांडियों की नाव में की जाती थी। उनमें काले कैनेक्विस, लिनन, कपास, कौड़ी, विभिन्न प्रकार के मसाले जैसे काली मिर्च, लौंग, इलायची, जायफल, दाल–चीनी आदि ले जाए जाते थे। वे मुख्य रूप से वेनेजियानोस नामक सोने के सिक्के, जो प्रत्येक बारह सौ रीस के बराबर थे; कॉफी, मूंगा, विभिन्न रंगों के कैमलेट, पारा, सिन्दूर और बिस्कुट के रूप में चाँदी वापिस लाते थे। बेहतर गुणवत्ता की अफीम अदन से आयात की जाती थी क्योंकि दीव में उगाई जाने वाली अफीम गुणवत्ता में निम्न स्तर की थी। सिक्कों और छड़ों के रूप में बड़ी मात्रा में सोना और चाँदी भी अरब के बन्दरगाहों से इस शहर में लाए जाते थे। गुजरात का होरमुज, शेहर और बारबारा और पूर्वी अफ्रीकी बन्दरगाहों मेलिन्डे और मोम्बासा के साथ भी गहरे व्यापारिक संबंध थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि घोड़े मूल रूप से लाल सागर और फारस की खाड़ी के क्षेत्रों से लाए गये थे। घोड़ों को मस्कट से दीव भी लाया जाता था। ये अरबी घोड़े थे जिनकी 'योद्धा घोड़ों' के रूप में काफी माँग थी। साथ ही दीव के जहाज खम्भात से चमकीले काँच के टुकड़ों वाले वस्त्र जैसे उत्पादों को मुंज तक ले जाते थे। हालाँकि, खाड़ी के साथ संबंध काफी महत्वपूर्ण था क्योंकि यह चाँदी का एकमात्र एशियाई स्रोत था। तीन प्रमुख मार्ग थे जिनके माध्यम से चाँदी मुगल भू–भाग में प्रवेश करती थी, लाल सागर के बन्दरगाह, फारस की खाड़ी और केपमार्ग। इनमें से चाँदी के अधिकांश व्यापारिक मार्ग गुजरात और उत्तरी कोंकण के बन्दरगाहों पर मिलते थे, जहाँ से उन्हें सिक्के बनाने के लिए अहमदाबाद भेजा जाता था। इन व्यापारियों द्वारा पूर्वी अफ्रीका से हाथी दाँत, सोना और गुलाम और फारस की खाड़ी के बन्दरगाहों से लाई गई बहुमूल्य धातुओं ने गुजराती बन्दरगाहों के आसपास के क्षेत्रों को दासों के बाजार के अलावा, सर्राफा, व्यापार और हस्तशिल्प के प्रमुख केन्द्र के रूप में विकसित किया। कसीदाकारी के काम, नक्काशी, हाथी दाँत के काम, रत्नों की कटाई, सफाई और दक्कन से आने वाले बहुमूल्य रत्नों के प्रसंस्करण जैसे विशिष्ट गहन श्रम वाली वस्तुओं का निर्माण तटीय गुजरात के आसपास के क्षेत्रों में अभूतपूर्व तरीके से विकसित हुआ। सोने–चाँदी के अपार प्रवाह ने मुगलों को अहमदाबाद में अपना सर्वश्रेष्ठ टकसाल स्थापित करने के लिए प्रेरित किया। दीव के व्यापारियों ने कभी–कभी जहाजों

को कुंग और बसरा भेजा। मस्कट के व्यापार को भारतीय व्यापारियों के एक समूह द्वारा नियंत्रित किया जाता था, जो ज्यादातर दीव के कफोल बनिया और केरल के मापिला थे। कफोल बनिए जरीबा युद्ध बेडे और शहरी कुलीन से जुड़े थे और उन्हें करों से छूट दी जाती थी।

लाल सागर मार्ग गुजराती व्यापारियों के लिए, विशेष रूप से सूरत के लिए सबसे महत्वपूर्ण था। इस मार्ग में गुजराती और यूरोपीय लोगों के बीच प्रतिस्पर्धा 1620 और 1630 के बीच महसूस की गई थी और गुजरात के अकाल के बाद अधिक तेज हो गई, जब निर्यात के लिए वस्तुओं की आपूर्ति कभी–कभी बन्द हो जाती थी। भारत, ईरान, तुरान और अन्य पश्चिमी एशियाई क्षेत्रों के बीच सूरत से काफी मात्रा में व्यापार किया जाता था। अंग्रेजी अनुमान के अनुसार, 1661 में दस लाख रूपये मूल्य के भारतीय सूती वस्त्र सूरत से ईरान भेजे गये थे। यह संभव है कि इनमें से कुछ वस्त्रों को किर्मन या मशद के माध्यम से कारवाँ मार्ग से तुरान या पश्चिमी की ओर ओटोमन शहरों में भेज दिया गया हो। इस विक्रय से ईरानी चाँदी की पर्याप्त मात्रा उत्पन्न हुई होगी, जिसमें से अधिकांश सूरत टकसाल में लाई गई थी (स्टीफन फ्रेडरिक डेल, *इंडियन मर्चेंटस एंड यूरेशियन ट्रेडर्स 1600–1750*, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1994)। सूरत–मोचा व्यापार में बाहरी यात्रा में अधिकांश रूप से गुजरात के वस्त्र और आने वाली यात्रा में बहुमूल्य धातुएँ शामिल थीं।

बंगाल से व्यापार मार्ग श्रीलंका, मालाबार और मालदीव तक जाते थे। इन सभी क्षेत्रों को बंगाल से वस्त्र और खाद्य पदार्थों का निर्यात किया जाता था, और सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों में मालदीव को चावल का निर्यात वास्तव में बंगाल व्यापार की विशेषताओं में से एक था। बदले में, बंगाल ने श्रीलंका की दालचीनी और सुपारी, मालाबार की काली मिर्च और मालदीव के कौड़ियों का आयात किया। बंगाल में, ये कौड़ियाँ छोटे लेन देन में विनिमय के माध्यम के रूप में कार्य करती थीं और इस अवधि में चाँदी के टके की तुलना में कम मूल्य की गढ़ी हुए मुद्रा की अनुपस्थिति में विशेषरूप से महत्वपूर्ण थी। दक्षिण पूर्व एशिया के लिए व्यापार कोरोमंडल के लम्बी दूरी के व्यापार, विशेषकर दक्षिण कोरोमंडल के बन्दरगाहों से प्रमुख था। सदी के मध्य दशकों तक यह व्यापार अच्छी तरह से स्थापित था। यह दक्षिण दिशा की ओर बढ़ रहा था, पलयाकर से दूर, और देवानमपटनम, पांडिचेरी, कुडडालौर, पोर्तोनोवो और नगोर की दिशा में बढ़ रहा था और इसने गिरावट प्रदर्शित की। कोरोमंडल वस्त्रों ने आचेह, मेलाका, मकासर और बैटंम के पहले से ही स्थापित व्यापार केन्द्रों के माध्यम से और इनसे सुमात्रा, जावा, मोलुकास और मलय प्रायद्वीप के आंतरिक बाजारों तक, दक्षिण पूर्व एशियाई बाजारों में अन्दर तक प्रवेश किया।

कोरोमंडल तट और इंडोनेशियाई द्वीप समूह के बीच व्यापार विभिन्न वस्तुओं, मुख्य रूप से काली मिर्च के बदले भारतीय वस्तुओं के साथ वस्तु विनिमय व्यापार पर आधारित था। मौलुकास के उत्कृष्ट मसालों के अलावा दक्षिण पूर्व एशियाई काली मिर्च भी यूरोप के साथ कम्पनियों के व्यापार में मुख्य निर्यात की वस्तु थी। चूंकि इंडोनेशियाई द्वीप समूह में आमतौर पर चाँदी के भुगतान से मसाले प्राप्त नहीं किये जा सकते थे, इसलिए कोरोमंडल तट पर खरीददारी की तीव्र वृद्धि में भारतीय वस्त्रों का प्रभावशाली प्रभुत्व स्पष्ट रूप से जाहिर होता है। कोरोमंडल और दक्षिण पूर्व एशिया के बीच व्यापार का स्वरूप वस्त्र और काली मिर्च की अन्तर्निर्भरता द्वारा निर्धारित होता था।

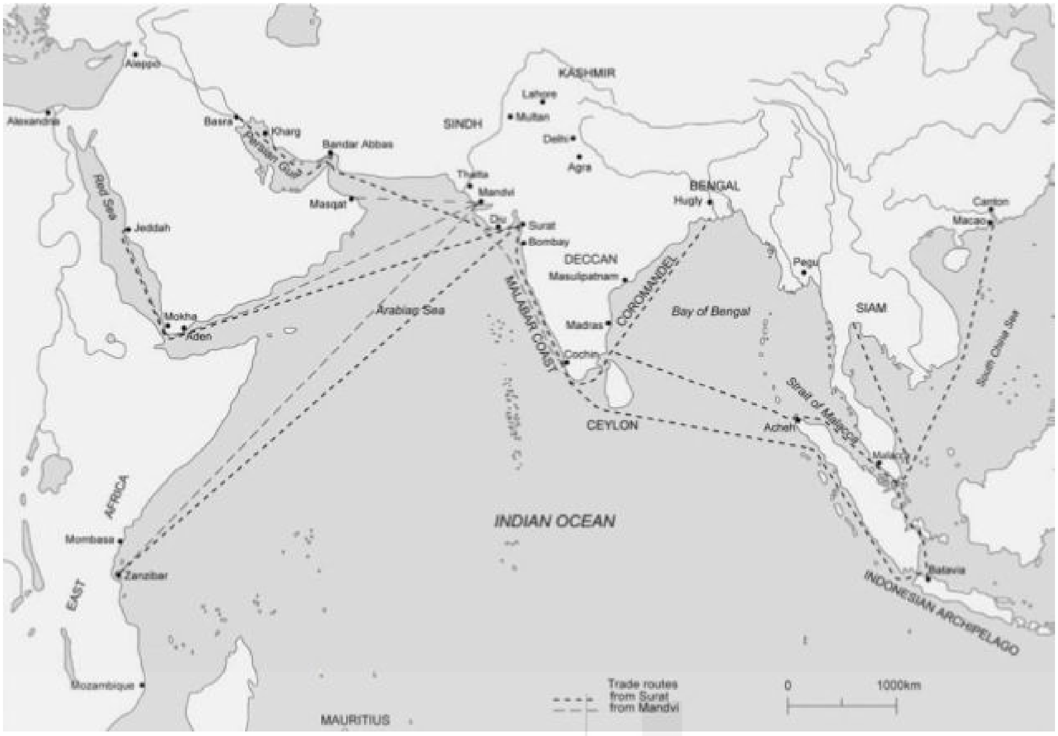

चित्रः हिन्द महासागर व्यापारिक संजाल

साभार–स्रोत: Ghulam Nadri, *Eighteenth Century Gujarat, The Dynamics of its Political Economy, 1750-1800,* Brill, Leiden, 2009

कोरोमंडल वस्तुओं के निर्यात के लिए विकास का एक क्षेत्र दक्षिण पूर्व एशिया की मुख्य भूमि के राज्य थेः अरक्कन, पेगु, तेनासेरिंम, अयुथ्या। सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बर्मा और स्यािम् देश के बन्दरगाहों मरौक–यु, सिरयाम, मेरगुई, तवोय, तेनासेरिंम और अयुथ्या के लिए व्यापार का विस्तार हुआ। कोरोमंडल वस्त्र उत्पादकों ने विभिन्न क्षेत्रों की विशेष अभिरुचि के अनुरूप वस्तुओं का विनिर्माण करते हुए, दक्षिण–पूर्व एशियाई बाजारों के लिए स्वयं को तैयार किया था। सबसे अधिक निर्यात कपास के रेशों से मोटी बुनाई के वस्त्र थे, जिन्हें समाज के गरीब वर्गों द्वारा सस्ते कपड़ों के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता था। जब इन्हें चमकीले रंगों में रंगा गया और इनसे पुरूषों और महिलाओं द्वारा पहनने के उपयुक्त कपड़े बनाये गये, तो दक्षिण–पूर्व एशिया में इनकी तीव्र माँग हो गयी। अधिक समृद्ध लोगों की अभिरुचि के अनुरूप छपाई वाले सूती कपड़े थे जिन्हें छींट कहा जाता था, जिसमें रमणीय पुष्प संबंधी और ज्यामितिय डिजायन थे और मलमल की बारीक किस्में थीं, जिनमें कोरोमंडल के निर्यात ने गुजरात और बंगाल के निर्यातों के साथ प्रतिस्पर्धा थी। इस समय तक, दक्षिण–पूर्व एशियाई क्षेत्रीय भौगोलिक नाम वाले वस्त्रों की किस्मों ने गाँव तक में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई थी और व्यापार में हर कोई दक्षिण–पूर्व एशिया के विभिन्न भागों की माँगों से परिचित था। चावल को पर्याप्त मात्रा में अचेह और सुमात्रा के बन्दरगाहों और मेलाका और मलय बन्दरगाहों तक ले जाया जाता था। सेलम जिला और दक्कन से निर्मित स्टील का निर्यात मध्यम मात्रा में किया जाता था। नील, चमड़ा, रॉकफिश की खाल का व्यापार निर्यात होने वाली अन्य वस्तुओं में शामिल था। कभी–कभी दासों का व्यापार होता था, जिन्हें सीधे कोरोमंडल से लिया जाता था या बर्मा और अरक्कन से पुनःनिर्यात किया जाता था। दक्षिण–पूर्व एशिया से कोरोमंडल को आने वाले आयात समान विविध थे। काली मिर्च और मसालों का आयात किया जाता था। दक्षिण कोरोमंडल में मसाले भारी मात्रा में नहीं बेचे जाते थे, जितना कि वे गोलकुंडा में बेचे

जाते थे। टिन एक आकर्षक आयात था और पूरे क्षेत्र में इसकी बहुत माँग थी। इसी तरह तांबा भी था, जो डच लोगों द्वारा जापान से सीधे आयात शुरू करने से पहले बर्मा और सियाम् से लाया जाता था। हाथी और घोड़े लाए जाते थे। दक्षिण–पूर्व एशियाई वनों से सुगन्धित लकड़िया जैसे चन्दन, विभिन्न रंजक और गोंदों की भारतीय विनिर्माण में अनेक उपयोग थे और उनकी बहुत माँग थी।

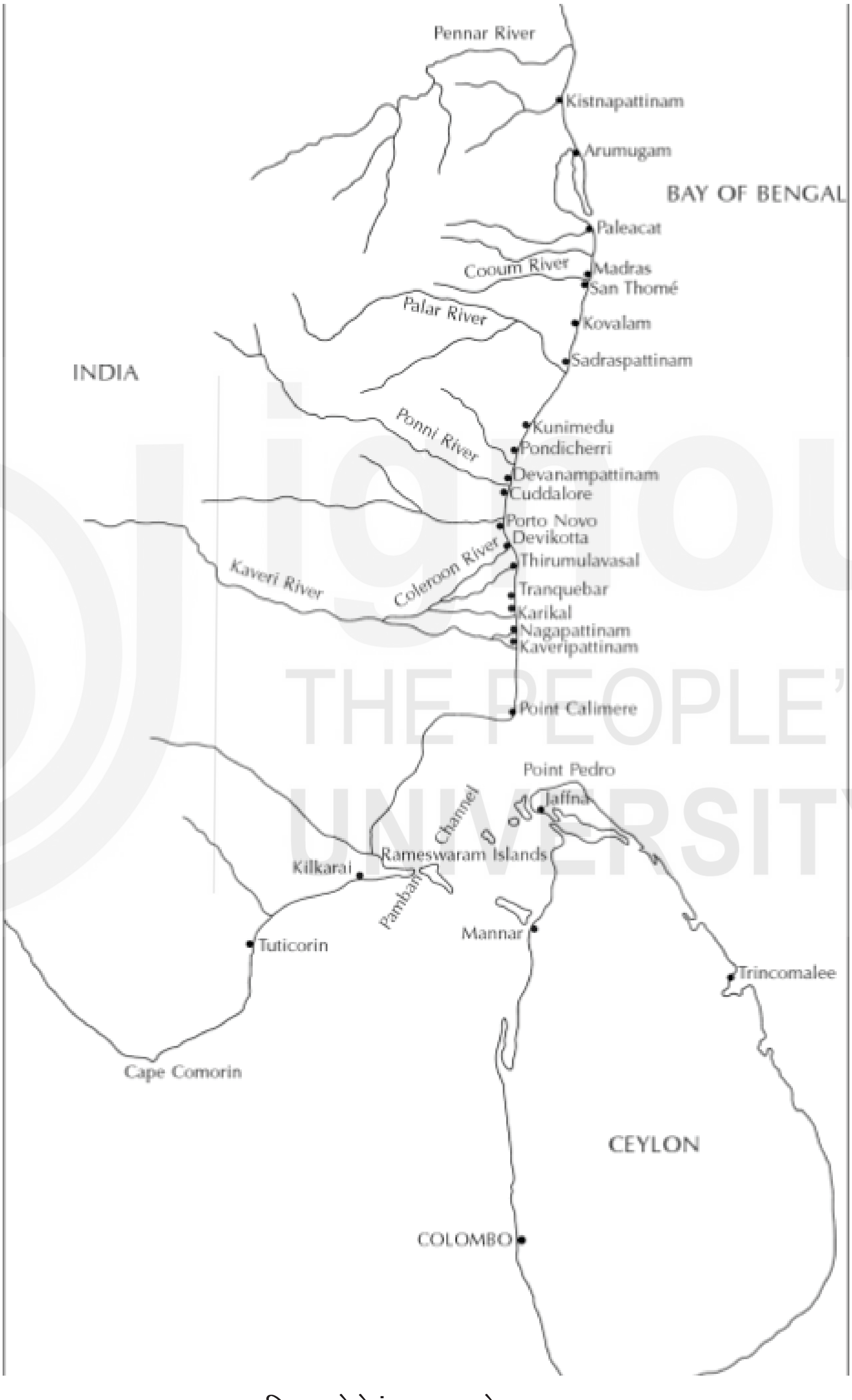

चित्रः कोरोमंडल तट के बन्दरगाह

साभार–स्रोत: Radhika Seshan, *Trade and Politics on the Coromandel Coast 17th and Early 18th centuries*, Primus, New Delhi, 2012, p. 9

चित्रः मुगल गुजरात

साभार–स्रोत: Ghulam Nadri, *Eighteenth Century Gujarat, The Dynamics of its Political Economy, 1750-1800,* Brill, Leiden, 2009

8.3 यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियाँ

सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी के दौरान हिन्द महासागर के अनेक व्यापारिक केन्द्र यूरोपीय नियन्त्रण में आ गये। पुर्तगाली, डच, अग्रेंजी और फ्रांसिसियों ने एक दूसरे की सर्वोच्यता को चुनौती दी और इसके परिणामस्वरूप विभिन्न बन्दरगाह शहरों के नियंत्रण में बदलाव आया। लेकिन मुख्य चुनौतियाँ तब आई, जब इन राष्ट्र–राज्यों (डच, फ्रांसीसी और अंग्रेजी) ने सत्रहवीं शताब्दी की शुरुआत में अपने व्यापारियों को चार्टर्ड कम्पनियों में संगठित किया, ताकि सोलहवीं शताब्दी से चले आ रहे पुर्तगालियों के प्रभुत्व वाले राजसी एकाधिकार का मुकाबला किया जा सके। (आप **बी एच आई सी 107 की इकाई 13** में पहले ही इसका विवरण पढ़ चुके हैं)।

1600 में सबसे पहले अंग्रेजी संयुक्त पूंजी कम्पनी, ईस्ट इंडिया कम्पनी (ई आई सी) आई थी। इसके दो साल बाद डच ईस्ट इंडिया कम्पनी, वेरेनिगडे ऑस्टिनडिश कोम्पैनी (वी ओ सी) आई। नीदरलैंड की प्रस्फुटित पूंजीवादी अर्थव्यवस्था को ध्यान में रखते हुए वी ओ सी को व्यापार और मुनाफा कमाने के लिए संगठित किया गया था। यह ई आई सी से भी अधिक आक्रामक थी और इसने हिन्द महासागर में पुर्तगालियों को चुनौती देने की पहल की। इन दोनों कम्पनियों ने जिन मुख्य उत्पादों का कारोबार किया, उनमें वस्त्र और मसाले थे। इन

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

कम्पनियों ने भले ही व्यापारिक उद्यमी के रूप में शुरुआत की हो, लेकिन अन्त में, वे और भी बहुत कुछ तलाश रही थीं। वे साम्राज्य निर्माता बन गई और उनके लक्ष्य नितान्त व्यापार से आगे बढ़ने लगे। अंग्रेजी ईस्ट कंपनी ज्यादातर वस्त्रों और कपड़ों का कारोबार करती थी। इसी बीच में, डच ईस्ट इंडिया कम्पनी बड़े पैमाने पर मसाले के व्यापार में संलग्न थी। दोनों ने व्यापार के प्रत्येक पहलू में अपने लिए एक छोटा सा विशिष्ट स्थान बनाया। हालाँकि, इसने अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी को डच मसाला व्यापार में घुसपैठ करने की कोशिश करने से नहीं रोका। सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के दौरान कुल आयात के 95 प्रतिशत और 84 प्रतिशत के साथ, भारत अंग्रेजी कम्पनी के व्यापार के लिए प्रमुख केन्द्र था। सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कच्चे रेशम, वस्त्र और चाय की हिस्सेदारी में वृद्धि हुई।

8.3.1 पुर्तगाली

पुर्तगाली वाणिज्य प्रणाली लुसीतानियों के लिए एकाधिकार व्यापार और एशियाई लोगों के लिए लाइसेंस आधारित (कार्टज आधारित) व्यापार की पद्धति पर बहुत अधिक निर्भर थी। कार्टेज या पास का उपयोग न केवल पुर्तगाली ताज के लिए आरक्षित वस्तुओं के परिवहन को, विशेष रूप से मसालों के परिवहन का तुर्क और एबीसिनियन मुसलमानों के लिए प्रतिबंधित करने के लिए किया जाता था, बल्कि इसके द्वारा भारतीय व्यापारियों को एक या एक से अधिक पुर्तगाली बन्दरगाहों पर शुल्क का भुगतान करना होता था। सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी के दौरान 'भारत से भारत के साथ व्यापार' या एशिया के भीतर व्यापार एशिया में पुर्तगाली व्यापार, का एक बहुत ही महत्वपूर्ण घटक था। अलफोंसीडी अल्बुकर्क के समय से पुर्तगालियों का अन्तर्एशियाई व्यापार गोवा ओर लिस्बन के बीच के व्यापार से अधिक महत्वपूर्ण था। (ओमप्रकाश, *यूरोपीयन कमर्शियल एन्टरप्राइज, द न्यू केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया*, वाल्यूम 5, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, 1998, पृष्ठ 49)।

पुर्तगालियों ने होरमुज और सिन्ध से दीव ले जाए जाने वाले प्रत्येक घोड़े पर ब्यालीस बारदौस की माँग की। सीमा शुल्क और घोड़ों के व्यापार ने इसे पुर्तगालियों के लिए काफी लाभप्रद केन्द्र बना दिया। मस्कट का बहुत कम राजस्व, आंशिक रूप से सर्राफा में, आंशिक रूप से घोड़ों, खजूरों और फलों के रूप में, दीव और चौल में पहुँचता था। समुद्र में तनाव के कारण, पुर्तगाली प्रशासन व्यापारियों के जहाजों की सुरक्षा में सिन्ध और दीव ले जाने के लिए सालाना दो से तीन युद्ध पोत या फ्रिगेट भेजता था। हालाँकि मस्कट का सीमा शुल्क मूल रूप से बसरा और भारत के पश्चिम तट के बीच व्यापार पर निर्भर था। मस्कट को खो देने के साथ, खाड़ी के लिए पुर्तगाली नौ परिवहन काफी संख्या में कम हो गया था।

इस आकर्षक व्यापार का लाभ अक्सर पुर्तगाली ताज के बजाए निजी व्यापारियों को जाता था। दीव के निजी पुर्तगाली व्यापारी लम्बे समय तक खाड़ी और होरमुज के साथ व्यापार में सक्रिय थे। 1630 में गोवा में पुर्तगाली देश के व्यापारियों ने उस व्यापार में 28 लाख 50 हजार जेराफिन का निवेश किया, यह निवेश उसी वर्ष भारत से लिस्बन के पुर्तगाली निर्यात के मूल्य का पंद्रह गुना था। (जॉर्ज ब्राएन सुजा, *पोर्चुगीज, डच एंड चाइनिज इन मेरिटाइन एशिया, सी. 1585–1800*, ऐशगेट वेरीयोरम, सरी, 2014, पृष्ठ 121)। 1580 और 1640 के बीच, निजी पोतभार की मात्रा और मूल्य 1580–1640 की अवधि में एशिया से आयात किये गये व्यापार के कुल मूल्य का लगभग 90 प्रतिशत था। भले ही निजी व्यापार की मात्रा को बढ़ा चढ़ा कर पेश किया गया हो, लेकिन व्यापार की मात्रा काफी अधिक थी। पुर्तगाली मौजूदा व्यापारिक संजाल का हिस्सा बन गये और उन्होंने मौजूदा व्यापारिक संजाल को परिवर्तित किया।

पुर्तगालियों के अन्तर–एशियाई व्यापार के महत्वपूर्ण नवाचारों में से एक गोवा और नागासाकी के बीच लम्बी दूरी के व्यापार का खोला जाना और एकाधिकार की शुरुआत थी जिसे अक्सर सख्ती से लागू नहीं किया जाता था। पश्चिम अफ्रीका के साथ दीव और दमन का वस्त्र व्यापार भारत में पुर्तगाली साम्राज्य का आधार बन गया। हालांकि समय के साथ हिन्द महासागर क्षेत्र में पुर्तगालियों का वर्चस्व कम हो गया, फिर भी बन्दरगाह शहर फलते–फूलते व्यापारिक केन्द्र बने रहे। पुर्तगालियों ने पुर्तगाली ताज के लिए दीव और दमन के आर्थिक महत्व को महसूस किया। इसका प्रभाव पुर्तगाली नीति–निर्माण पर पड़ा, व्यापारिक जिसने सत्रहवीं शताब्दी के बाद से उदार व्यापारिक नीतियों को प्रोत्साहन देना शुरू किया। चुनौतियों का सामना करने के लिए दीव और दमन के व्यापारियों ने व्यापारिक संजाल में नये व्यापार मार्गों को बनाने और व्यापारिक वस्तुओं के विविधिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। डच और अंग्रेजी प्रतिस्पर्धा में वृद्धि और एशिया में पुर्तगाली शक्ति के पतन के साथ, पुर्तगाली अधिकारियों के निजी व्यापार भारतीय संजाल और व्यापार के देशी संजाल पर अधिकाधिक निर्भर होने लगे।

8.3.2 अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी

अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना 1600 में एक संयुक्त पूंजी कम्पनी के रूप में हुई थी जिसका ईस्टइंडीज के साथ व्यापार पर एकाधिकार था और जिसकी गारंटी सम्राट द्वारा दी गई थी। यह एक संयुक्त पूंजी कम्पनी के रूप में शुरू हुई जिसने व्यापार पर ध्यान केन्द्रित किया क्योंकि अंग्रेजों को अधिक सामग्री और संसाधनों की आवश्यकता थी। अंग्रेजी निजी व्यापारियों में दो समूह शामिल थेः अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी के सेवक और भारत में बसे व्यापारी। उनका व्यापार भारत के सामुद्रिक व्यापार के पश्चिमी और पूर्वी दोनों क्षेत्रों में था और भारत के पश्चिमी तट में बन्दरगाहों के अलावा लाल सागर और फारस की खाड़ी क्षेत्रों तक फैला हुआ था। अंग्रेजी निजी जहाजरानी शायद गुजराती व्यापार के लिये ज्यादा हानिकारक थी। जबकि अठारहवीं शताब्दी की शुरुआत में सूरत से बंगाल जाने वाले जहाजों की संख्या लगभग 50 थी, लेकिन 1730 के दशक तक यह घट कर नहीं के बराबर हो गई। यह अनुमान लगाया गया है कि सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में गुजराती जहाजी बेड़े की कुल संख्या सौ से अधिक थी, जिनमें से आमतौर पर दो मुगलों के थे, जबकि सूरत के महान व्यापारी, मुल्ला अब्दुल गोफुर, अकेले सत्रह जहाज़ के मालिक थे। यह 1760 के दशक के आसपास था कि पश्चिमी हिन्द महासागर में व्यापार की जगह पर पूर्व के व्यापार में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई थी जिसे होल्डन फरबर द्वारा 'व्यापारिक क्रांति' के रूप में वर्णित किया गया था। कभी–कभी अंग्रेज अपनी सुमात्रा की फैक्ट्रियों के माध्यम से मद्रास में मसाले लाते थे और जब ऐसा हुआ तो डच मसालों की बिक्री पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। अंग्रेज कभी–कभी मालाबार और इन्डोनेशियाई दालचीनी लाने में सक्षम थे, लेकिन इस दालचीनी की गुणवत्ता डच की श्रीलंका की दालचीनी से इतने निम्न स्तर की थी कि इसने डच विक्रय पर कोई प्रभाव नहीं छोड़ा।

8.3.3 डच ईस्ट इंडिया कम्पनी, वेरेनिगडे ऑस्टिनडिश कोम्पैनी (वी ओ सी)

डच भारतीय व्यापार के तरीकों के सबसे अधिक जानकार थे और भारतीय बाजार में सिद्धहस्त थे। डच ईस्ट इंडिया कम्पनी 1602 में कई कम्पनियों के विलय से बनाई गई थी, जिसने कम्पनियों को एक–दूसरे के खिलाफ प्रतिस्पर्धा करने की बजाए एक के साथ मिलकर

कार्य करने की शुरुआत की, उसका भारतीय देसी शासकों और उनके अधिकारियों पर कुछ प्रभाव था। अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में बहुत प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद उसकी शक्ति बनाए रखने में इन वजहों ने योगदान दिया। सत्रहवीं शताब्दी की शुरुआत में पूर्वी एशिया के सभी जलमार्गों पर पुर्तगाली एकाधिकार को डच और अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनियों द्वारा सफल चुनौती दिये जाने के कारण यूरो–एशियाई व्यापार के परिमाण और मूल्य में वृद्धि हुई। व्यापार की वस्तुओं में भी एक बड़ा बदलाव आया। काली मिर्च और अन्य मसालों का, मसालों के कुल आयात में भारी अनुपात था, लेकिन उन्हें व्यापार की प्रमुख वस्तुओं के रूप में वस्त्र और कच्चे रेशम द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया था। डच ईस्ट इंडिया कम्पनी (वी ओ सी) के अन्तर–एशियाई व्यापार में भारतीय वस्त्र सबसे महत्वपूर्ण वस्तु बन गये। मसालों में डच का वास्तविक एकाधिकार था और उसमें मुनाफा अत्यधिक था। हर साल एक निश्चित मात्रा में उन्हें बेचा जाता था। मसालों की कीमतें बहुत सख्ती से तय की गई ताकि प्रतिद्वन्द्वियों के लिए मसाले खरीदना और उन्हें अन्य जगहों पर जहाँ डचों की फैक्ट्रियाँ थीं, बेचना लाभदायक न हो। डच कीमतें तय कर सकते थे और इन मसालों की एक निश्चित मात्रा बेच सकते थे। लेकिन अगर कीमतें बहुत अधिक तय की गई तो इसका बिक्री पर असर पड़ा। यह पाया गया कि 1697 में तय की गई कीमतें बहुत अधिक थीं और दालचीनी और लौंग की कीमतों में कटौती की गई। डच लोगों द्वारा श्रीलंका में दालचीनी निजी व्यापारियों को नहीं बेची जाती थी, बल्कि केवल कोरोमंडल की फैक्ट्रियों में बेची जाती थी। कुल निर्यात में बहुमूल्य धातुओं का दबदबा रहा। डच कम्पनी के मामले में, निर्यात की गई वस्तुओं में ऊनी, रेशम और लीडेन में विनिर्मित अन्य वस्त्र और गैर–कीमती धातु, और शराब, मदिरा आदि थे। भारत मुख्य रूप से एशिया के भीतर और साथ ही साथ एशिया और यूरोप के बीच होने वाले वी ओ सी के व्यापार में शामिल था। शौरा (साल्टपीटर), नील और अफीम जैसी वस्तुएँ भारत से प्राप्त की जाती थी। भारतीय व्यापार का प्रमुख महत्व एशियाई और यूरोपीय बाजारों के लिए वस्त्रों और कच्चे रेशम की आपूर्ति में था।

8.3.4 फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनी

फ्रांसीसी, जो एशियाई व्यापार में सामुद्रिक उद्यम के क्षेत्र में देर से आए थे, उन्होंने हिन्द महासागर के व्यापार में अपने दावों को पेश करने के लिए कड़ा प्रयास किया। इसने उन्हें स्थानीय राजनैतिक अधिकारियों के साथ–साथ व्यापारी समूहों के साथ दीर्घकालिक बातचीत में शामिल किया, जो हर वक्त सौहार्दपूर्ण या प्रभावी नहीं थी। फ्रांसीसी व्यापार सत्रहवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में प्रभावी होने लगा था। 1699 में उनको पाँडिचेरी के वापस मिलने और गर्वनर फ्रेकोइस मार्टिन (1699–1706) के बुद्धिमान प्रबन्धन ने लाभदायक व्यापार और निवेश का मार्ग प्रशस्त किया। अंग्रेजों और डच लोगों के समतुल्य आर्डर 1710 के बाद से उन्हें मिलने शुरू हो गये थे, हालांकि वे नियमित नहीं थे और यूरोप से जहाजों और पूंजी के आगमन पर निर्भर थे। डेनिश कम्पनी का ट्रेक्यूबार में अपना किला और फैक्ट्री थी, जो उन बाजारों को विचलित करने के लिए पर्याप्त थी जो आमतौर पर नागपट्टनम को पोषित करते थे।

बोध प्रश्न 1

1) हिन्द महासागर में व्यापारिक संजाल पर एक टिप्पणी लिखिये।

....

....

....

....

2) हिन्द महासागर में पुर्तगाली व्यापार प्रथाओं के स्वरूप की जाँच कीजिए।

....

....

....

....

3) सत्रहवीं शताब्दी में यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों द्वारा किये जाने वाले व्यापार के स्वरूप की संक्षेप में चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

8.4 सत्रहवीं शताब्दी में व्यापारिक संजाल में बदलाव

पूर्व से संपदा के प्रवाह का मतलब पुर्तगालियों के लिए आर्थिक विकास नहीं था, बल्कि समाज के एक विशेष वर्ग की शक्ति और संपदा में वृद्धि ही थी। निरंतर युद्धों के परिणामस्वरूप और उच्च स्तर के भ्रष्टाचार के कारण, भारत में पुर्तगालियों का कोष खाली था। पुर्तगालियों ने वास्तविक व्यापार के बजाए सीमा शुल्क संग्रह का सहारा लेकर राजकोषीय संकट को दूर करने की कोशिश की। पश्चिमी तट पर, जबकि गोवा जैसे पुर्तगाली गढों में गिरावट आई, वही सूरत समृद्ध हुआ। 1627 में राजा को सौपीं गई एक रिपोर्ट में स्पष्ट किया गया था कि गोवा के सीमा शुल्क से होने वाला राजस्व एक दशक पहले की तुलना में आधा था और इसके परिणामस्वरूप जो पहले खाते में पर्याप्त अधिशेष था, वह अब घाटे में बदल चुका था। गुजराती वस्तुएँ ज्यादातर पुर्तगाली कार्टेज के संरक्षण में पुर्तगाली जहाजों में ले जाई जाती थी, लेकिन पुर्तगाली नौसैनिक श्रेष्ठता में गिरावट के साथ, डच और अंग्रेजों के बार–बार होने वाले हमलों के कारण, व्यापारियों को हालाँकि अभी भी कार्टेज का सहारा लेना पड़ता था, परन्तु पुर्तगालियों द्वारा उन्हें आवश्यक सुरक्षा नहीं दी पा रही थी, जिसके कारण भारतीय व्यापारियों को डच और अंग्रेजों की सुरक्षा लेने के लिए अभियान चलाना पड़ा। व्यापारियों के एक मार्ग के नुकसान की क्षतिपूर्ति डच और अंग्रेजों के साथ नये मार्ग खोलकर की गई।

लाल सागर और फारस की खाड़ी के बीच गुजरात के सामुद्रिक संबंधों में गिरावट बढ़ती राजनैतिक असुरक्षा और अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मुगलों के पतन के साथ कानून व्यवस्था के टूटने के कारण आई। हालांकि गुजराती नौ परिवहन अपने चरम पर था, लेकिन गुजरात के निर्यात के बढ़े हुए परिमाण ने लाल सागर और हिन्द महासागर में अन्य स्थानों के बाजारों को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया था (अशिन दास गुप्ता, ''इंडिन मर्चेन्टस

एंड द ट्रेड इन द इंडियन ओसन'', *द कैम्ब्रिज इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया* भाग–1, सं. तपन रॉय चौधुरी व इरफान हबीब, ओरियन्ट लोंगमैन, हैदराबाद, पृष्ठ 433)। 1698 और 1710 के बीच लाल सागर और गुजरात के बीच की समुद्री यात्राऐं गुजरात के आंतरिक क्षेत्रों में राजनीतिक अस्थिरता और यमनी गृहयुद्ध की लागत को पूरा करने के लिए मोचा में गुजराती व्यापारियों से वसूली के कारण अक्सर हानिप्रद थी। फिर भी व्यापार के पारंपरिक संजाल के कारण भारत के पश्चिमी तट के साथ फारस की खाड़ी और लाल सागर के बीच व्यापार जीवित रहा, हालाँकि व्यापार की मात्रा में पर्याप्त गिरावट आई थी।

पुर्तगालियों और डच और अंग्रेजों के बीच व्यापारिक संबंधों का लेटिन अमेरिका से लेकर यूरोप और अफ्रीका तक के व्यापक राजनैतिक परिदृश्य के साथ गहरा संबंध था। पूर्व की स्थिति यूरोप की परिस्थितियों से भिन्न थी जहाँ बिट्रिश विदेशी व्यापार में पुर्तगाल का स्थान निर्धारक था। 1630 के दशक में डच के कारण पुर्तगाली व्यापारियों को विनाशकारी नुकसान उठाने पड़े। डच काली मिर्च के व्यापार और चाँदी के व्यापार को नियंत्रित करना चाहते थे, जो ज्यादातर पुर्तगालियों द्वारा किया जाता था। काली मिर्च की प्राप्ति के लिए गुजराती वस्त्र महत्वपूर्ण थे, और इसलिए गुजरात के सामुद्रिक व्यापार पर नियंत्रण डच के लिए महत्वपूर्ण था। वस्त्र व्यापार पर नियन्त्रण यूरोपीय शक्तियों के बीच विवाद के प्रमुख मुद्दों में से एक था।

8.5 यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियाँ और उपमहाद्वीप की राजनैतिक शक्तियाँ

बदलते राजनैतिक भाग्य के साथ व्यापारी और राज्य के संबंध बदलते रहते हैं। गोलकुंडा और बीजापुर के दो दक्कन राज्यों ने पूर्व की ओर कोरोमंडल तट तक विस्तार किया था। परिणामस्वरूप, कोरोमंडल तट और उसके आन्तरिक क्षेत्रों को नियंत्रित करने वाले गोलकुंडा सैन्य सेनापति की अगुआई में नई प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित की गई थी। इसी तरह बीजापुर के सैन्य अधिकारियों ने कुडडालौर और पोंटोनोवो के दक्षिणी आंतरिक क्षेत्रों को प्रशासित किया। कुड्डालौर और पोंटोनोवो के आंतरिक क्षेत्रों में मराठा प्रशासन की उपस्थिति व्यापार को अस्थिर कर रही थी। कोरोमंडल के व्यापारियों को बदलती राजनैतिक व्यवस्था के साथ तालमेल बिठाना पड़ा। पहले उनमें से कुछ ने तट के साथ–साथ और बुनाई करने वाले और चावल उत्पादक गाँव शामिल थे। इन क्षेत्रों के नियंत्रण ने इन व्यापारियों को व्यापार की वस्तुओं तक विशेषाधिकार पहुँच और उत्पादन के पर्यवेक्षण करने की क्षमता प्रदान करके महत्वपूर्ण लाभ प्रदान किये थे। चुलिया मुस्लिम समुदाय के प्रमुख व्यापारियों के व्यावसायिक प्रारूप स्पष्ट रूप से भिन्न–भिन्न थे। वे किसी भी यूरोपीय बन्दरगाह में बसने के लिए आगे नहीं बढ़े, बल्कि अपने पारंपरिक जन्म स्थान के बन्दरगाह में बने रहे।

गोलकुंडा और मुगल शासक परिवारों के विपरीत, दक्षिणी शासक जहाजों के मालिक बनकर समुद्री यात्राएँ भेजकर विदेशी व्यापार में सीधे भाग नहीं लेते थे। इसका व्यापारियों पर विरोधीभासी प्रभाव पड़ा। एक ओर इसने व्यापार प्रक्रिया में प्रत्यक्ष राज्य के हस्तक्षेप को कम कर दिया। गोलकुंडा, और मुगल प्रांत गुजरात और बंगाल दोनों स्थानों में, विदेशी व्यापार में राज्य की भागीदारी की वजह से जहाज के मालिक शासक के लाभ के लिए महत्वपूर्ण क्षणों में बाजार की कार्यशैली में परिवर्तन कर देते थे। आंतरिक राजनैतिक परिवर्तनों ने एक ऐसी व्यवस्था को अस्त व्यस्त कर दिया, जिसके व्यापारी अभ्यस्त हो गये थे और जिससे वे

लोग लाभ प्राप्त कर रहे थे। शताब्दी के अन्तिम दशकों में परिवर्तन और तेज हो गये, जिससे व्यापारियों को उनके साथ समझौता करने के प्रयासों में तनाव झेलना पड़ा। हिन्द महासागर के व्यापार में यूरोपीय भागीदारी के रूप में गहरे बाहरी परिवर्तन से आए थे। इनमें से कुछ परिवर्तनों का लाभकारी प्रभाव पड़ा, तो कुछ अन्य ने उन पर प्रतिकूल प्रभाव डाला। आंतरिक और बाह्रय परिवर्तनों का संचयी प्रभाव कोरोमंडल व्यापारी की शांत दुनिया को हिला देने के रूप में हुआ और यह अठारहवीं शताब्दी में वाणिज्यिक संबंधों के पुनर्रेखन की ओर इंगित करता है।

8.6 यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियाँ और देशी व्यापारिक समूह

यूरोपीय और भारतीय व्यापारी वर्ग के बीच साझेदारी का अर्थ अक्सर मित्रता नहीं था। कई अवसरों पर यह एक तीक्ष्ण और निरंतर प्रतिस्पर्धा थी। यूरोपीय लोगों के वर्चस्व वाली संरचना के भीतर भारतीय व्यापारी एक अधीनस्थ कारक नहीं थे। भारतीय व्यापारियों को हमेशा केवल एक यूरोपीय कम्पनी से नहीं निपटना होता था, बल्कि उनके पुर्तगाली, अंग्रेजी और डच के साथ सामानांतर व्यापारिक संबंध होते थे। यह सूरत के पनपते मध्यस्थता शुल्क वाले व्यापार में विशेष रूप से प्रचलित था। डच और अंग्रेजों के उदय के बाद से भारतीय व्यापारियों की एशिया और यूरोप या पूर्वी बाजारों के बीच प्रत्यक्ष व्यापार में भागीदारी बढ़ी, जो पहले ज्यादातर पुर्तगालियों द्वारा नियंत्रित था। इस प्रकार यद्यपि यूरोपीय शक्तियों के बीच प्रतिस्पर्धा ने उनके मुनाफे कम कर दिये, लेकिन साथ ही साथ इसने नये मार्ग खोले और अनेक व्यापारी अक्सर एक बन्दरगाह शहर से दूसरे में हस्तांतरित हो गये।

व्यापारियों को, संजय सुब्रह्मण्यम् और सी ए बेली के शब्दों में एक वाणिज्यिक अभिजात वर्ग कहा जा सकता है, जिनके छोटे लोगों के साथ सांस्कृतिक और व्यापारिक संबंध थे, लेकिन पोर्टफोलियो पूंजीपतियों के विपरीत उनमें से बहुत कम का राजनैतिक झुकाव था और वे अपने वित्तीय लाभ के लिए राजनैतिक कृपादृष्टि पर निर्भर नहीं थे। इसके अलावा, व्यापारिक फर्म या घराने ज्यादातर पीढ़ी दर पीढ़ी अपनी पूंजी और बाजार के प्रभाव का पुर्नउत्पादन करते हैं और आर्थिक या राजनीतिक अरक्षितता से आसानी से प्रभावित नहीं होते थे, जैसा कि पोर्टफोलियो पूंजीपूतियों के मामले में था। रूबी मालोनी ने बताया कि यूरोपीय संरक्षण ने नई तकनीकों, बाजार नीतियों, संस्थाओं और भाषा के परिचय के साथ–साथ शहरों के जीवन चक्र को प्रभावित किया, लेकिन देसी समूह अपनी पहचान बनाये रखने में सफल रहे।

8.7 हिन्द महासागर में व्यापार का बदलता स्वरूप

जैकब सी. वान लेऊर ने व्यापार के अप्रभावी तरीके के आधार पर एशियाई व्यापार को ''छोटे पैमाने का फेरी वाला व्यापार'' के रूप में वर्णित किया। उन्होंने तर्क दिया कि एशियाई व्यापारी एक फेरी वाला था और व्यापार अत्यधिक रूप से विलासिता की वस्तुओं में था। नील्स स्टीन्सगार्ड ने यह स्वीकार किया कि फेरी वाला व्यापार भी काफी परिष्कृत वाणिज्यिक तरीकों का उपयोग कर सकता है, जैसे ''साझेदारी, और विनिमय पत्रों के माध्यम से हस्तानांतरण लेन–देन, और संयुक्त साख'' जो अनिश्चित बाजार कीमतों पर आधारित था। उन्होंने कारवाँ के वाणिज्यिक संगठनों, यानि फेरी वाले व्यापार और यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों के वाणिज्यिक ढांचे की तुलना करने की कोशिश की और कारवाँ पर कम्पनियों की संगठनात्मक श्रेष्ठता का प्रदर्शन किया। नील्स स्टीन्सगार्ड ने इंगित किया कि सत्रहवीं

शताब्दी के बाद से यूरो एशियाई व्यापार के संगठन और संचालन में एक क्रांति लाने में डच और अंग्रेजी कम्पनियों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। पुर्तगालियों के विपरीत डच और अंग्रेजों की सफलता सरकारी एकाधिकार या हिंसा के उपयोग पर नहीं बल्कि बाजारों में प्रतिस्पर्धा करने की उनकी क्षमता पर आधारित थी। हालांकि, ऐसे उदाहरण थे, जहाँ यह स्पष्ट है कि डच और अंग्रेजी कम्पनियों ने सरकारों पर एकाधिकार नियंत्रण हासिल करने के लिए व्यापक दबाव डाला।

अशिनदास गुप्ता ने तर्क दिया कि फेरी वाले की अवधारणा आवश्यक रूप से इस तथ्य के विरोध में नहीं थी कि हिन्द महासागर में सामुद्रिक मार्गों की यात्रा करने वाले अपने एक दो बंडल मोटे कपड़ों के साथ, छोटे व्यापारियों की प्रधानता के अलावा मुल्ला अब्दुल गफ्फूर जैसे धनी जहाज मालिक व्यापारियों ने भी हिन्द महासागर के व्यापार में भाग लिया। हालांकि, जैसा कि सुशील चौधरी बताते हैं कि विलासिता की वस्तुएं हिन्द महासागर के व्यापार की महत्वपूर्ण वस्तुएँ थीं और भारत का प्रमुख आयात सर्राफा था, लेकिन साथ ही दैनिक जीवन के उपयोग की सांसारिक वस्तुएँ वास्तव में व्यापार की प्रमुख वस्तुएँ थीं। वस्त्र निर्यात की प्रमुख वस्तुओं में से एक थे। उनमें से कुछ निस्संदेह मंहगे और महीन वस्त्र थे, लेकिन ज्यादातर बहुत सस्ते थे और निश्चित रूप से रोजमर्रा के पहनने वाले मोटे वस्त्र के थान थे। एक अन्य वस्तु जो निर्यात सूची में काफी प्रमुख रही वह चावल, गेहूँ, तेल, चीनी और अन्य वस्तुओं जैसे मुख्य खाद्य पदार्थ थे।

संयुक्त पूंजी कम्पनी और श्रेणी प्रणाली यूरोपीयों के साथ आये। दीव के बनियों की श्रेणी प्रणाली का मूर्त्त रूप 1689 में स्थापित कम्पैंहीया डॉस माजानेस था। कम्पैंहीया ने बनिया समुदाय के हितों की रक्षा करने और सौदेबाजी करने के लिए एक सामूहिक निकाय के रूप में काम किया। पारिवारिक संगठन और हिंद महासागर में लंबी दूरी के व्यापार के बीच घनिष्ट संबंध दर्शाते हैं कि कैसे सफल पूंजीवादी उद्यम नातेदारी पर आधारित सामाजिक संगठन से घनिष्टता से जुड़े हुए हैं। संजाल के पारिवारिक संबंधों के निर्माण में विवाह गठबंधनों ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अठारहवीं शताब्दी में दमन का हींग व्यापार इन्हीं पारंपरिक संजालों पर निर्भर था। हिन्द महासागर की इन विशेषताओं ने अक्सर पूंजी और वस्तु की उपलब्धता और वितरण को सुनिश्चित किया, और अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क बनाने में मदद की, और सांस्कृतिक रूप से भिन्न–भिन्न देशों में विदेशी व्यापारी के लिए आथित्य की व्यवस्था की। यह आमतौर कई पीढ़ियों के बीच हस्तांतरित किया जाता था और व्यापारी अपनी संपदा में विविधता लाने में सक्षम थे। भारत और चीन के बीच अफीम के व्यापार पर एकाधिकार स्थापित करने की अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी की कोशिशों की विफलता को देश में अफीम वितरक और व्यापारियों के संजाल की शक्ति और प्रभाव को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है।

वेबर ने पूंजीवाद के विकास के लिए हानिकारक पारम्परिक संबंधों की क्षमता की ओर संकेत किया था। हालांकि, घरेलू इकाईयों और व्यापक नातेदारी समूहों ने अक्सर हिन्द महासागर क्षेत्र और पश्चिम में भी वाणिज्यिक गतिविधियों में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यद्यपि अंग्रेजी और डच संयुक्त पूंजी कम्पनियां निदेशकों और शेयर धारकों द्वारा चलाई जाती थीं, यह भतीजों और मित्रों' के व्यक्तिगत संजाल पर भी निर्भर करती थी। हालांकि, भारतीय व्यापारियों ने अक्सर केवल धर्म या जाति के अनुसार नहीं, बल्कि व्यवसायिक नैतिकता के अनुसार लिखे गये शिष्टाचार और सामाजिक मानदंडों का अनुपालन किया। (आशिनदास

गुप्ता, ''सम एटीटयूडस अमोंग द 18जी सेन्चुरी मर्चेन्ट्स'', *द वर्ल्ड ऑफ द इंडियन ओशन मर्चेन्ट 1500–1800: कलेक्टेड़ एसेज ऑफ आशिनदास गुप्ता*, कम्पाइल्ड बाई उमादास गुप्ता, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2001, पृष्ठ 106)। भारतीय व्यापारियों और वणिकों के महत्वाकांक्षी और उद्यमी कौशल ने उन्हें चुनौतियों और तनावों का सामना करने के लिए अनुकूलित होने और अपनाने में मदद की।

बोध प्रश्न 2

1) सत्रहवीं शताब्दी में हिन्द महासागर में व्यापारिक संजाल में हुए बदलावों पर एक टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

....

2) यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों के प्रति भारतीय उपमहाद्वीप की राजनैतिक शक्तियों के रवैये की संक्षेप में चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

8.8 सारांश

हिन्द महासागर व्यापार जगत में भारत की खास भौगोलिक स्थिति ने प्राझइतिहासिक काल से इसकी सामुद्रिक अर्थव्यवस्था में अभूतपूर्व वृद्धि में मदद की। मुगल भारत के व्यापारिक संजाल में परिवर्तन लाने में सहायक थे। वे स्थिरता लाए और उन्होंने आंतरिक क्षेत्रों और बन्दरगाहों के बीच एक सेतू का काम किया। हालांकि, मुगल स्थलीय शक्ति थे और सामुद्रिक मार्गों को ज्यादा महत्व नहीं देते थे। व्यापारी वर्ग अक्सर यूरोपीय लोगों के साथ गठनबंधन करता था, क्योंकि उन्हें एहसास हुआ कि भारतीय शासक उनकी खुले समुद्रों में सहायता प्रदान नहीं कर पायेंगें जो यूरोपीय लोग करेंगे। यूरोपीय और भारतीय व्यापारिक वर्ग के बीच संबंध अक्सर तीक्ष्ण और निरंतर प्रतिस्पर्धा वाले थे। देसी व्यापारियों और वणिकों ने क्षेत्र की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। गुजराती देश की सबसे महत्वकांक्षी और उद्यमी आबादी में से एक थे। भारतीय व्यापारियों ने हिन्द महासागर में पुर्तगालियों के आने के साथ अपनी व्यापारिक गतिविधियों को रूपांतरित किया। पुर्तगालियों के साथ अपने सहयोग के कारण उन्हें बड़ी मात्रा में मुनाफे हुए और ये काफी हद तक आवर्धित हुए। उन्होंने बैकरों, दलालों और बाजार के देसी संजाल और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संजाल के बीच की कड़ी के रूप में कार्य किया। हालांकि, भारतीय व्यापारियों ने हमेशा एक यूरोपीय कम्पनी के साथ ही सौदा

नहीं किया, बल्कि पुर्तगाली, अंग्रेजी और डच के साथ एक साथ व्यापारिक संबंध देखें जा सकते हैं। डच और अंग्रेजों के उदय ने भारतीय व्यापारियों को एशिया और यूरोप या पूर्वी बाजारों के बीच प्रत्यक्ष व्यापार में भागीदारी की सुविधा प्रदान की, जो पहले ज्यादातर गोवा द्वारा नियंत्रित था। यूरोपीय लोगों के वर्चस्व वाले ढ़ांचे के भीतर भारतीय व्यापारी एक अधीनस्थ कारक नहीं थे।

8.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) भाग 8.2 देखें। व्यापार की वस्तुओं के रूप में कारीगर उत्पादों के साथ कृषि उत्पादन की विविधता पर भी प्रकाश डाला जाना चाहिए। हिन्द महासागरीय व्यापारिक संजाल में बंगाल की खाड़ी के साथ–साथ अरब सागर में व्यापार मार्ग शामिल होने चाहिए।

2) उपभाग 8.3.1 देखें। पुर्तगालियों के द्वारा व्यापार पर एकाधिकार स्थापित करने के प्रयास और सीमा शुल्क के आरोपण के बारे में विस्तार की आवश्यकता है।

3) भाग 8.3 देखें। उत्तर को सत्रहवीं शताब्दी पर केन्द्रित होना चाहिए, इसलिए अंग्रेजों की और डच ईस्ट इंडिया कम्पनी की भूमिका और उद्भव के बारे में विस्तार से देने की आवश्यकता है। पुर्तगालियों के साथ टकराव पर भी चर्चा होनी चाहिए।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 8.4 देखें। पुर्तगालियों के विपरीत अंग्रेज और डचों ने हिन्द महासागर के भीतर व्यापारिक संजाल की जटिलता को समझने की कोशिश की और गंभीर घुसपैठ की। इसके बाद उन्होंने इसे यूरोपीय बाजारों की व्यापारिक आवश्यकताओं के साथ जोड़ा।

2) भाग 8.5 देखें। भारत में कृषि और कारीगर उत्पादों की प्रचुरता ने शासक अभिजात वर्ग को समुद्री व्यापारिक कम्पनियों के महत्व के बारे में लगभग बेखबर बना दिया, इस प्रकार उनकी उदासीनता प्रमुख प्रतिक्रिया थी।

इस इकाई के लिए कुछ उपयोगी अध्ययन सामग्री

Chandra, Satish. ed. 1987. *The Indian Ocean: Explorations in history, commerce, and politics.* New Delhi: Sage Publications.

Raychaudhuri, Tapan& Habib, Irfan. ed. 1982. *The Cambridge Economic History of India, Vol. I: c. 1200-1750*, London: Cambridge University Press.

Gupta, Ashin Das and M. N. Pearson, eds. 1987. *India and the Indian Ocean 1500-1800.* Delhi: Oxford University Press.

Jain, L. C. 1929. *Indigenous Banking in India,* London: Macmillan.

Mehta, Makrand. 1991. *Indian Merchants and Entrepreneurs in Historical Perspective,* Delhi: Academic Foundation.

Subrahmanyam, Sanjay. ed. 1994. *Money and the Market in India 1100-1700.* Delhi: Oxford University Press.

इकाई 9 व्यापारी समुदाय और वाणिज्यिक पद्धतियां*

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 व्यापारी समुदाय

9.2.1 व्यापारी

9.2.2 महाजन और सर्राफ

9.2.3 दलाल

9.3 वाणिज्यिक पद्धतियां

9.3.1 हुंडी

9.3.2 बैंकिंग

9.3.3 सूदखोरी और ब्याज की दर

9.3.4 भागीदारी

9.3.5 बीमा (आंतरिक और समुद्री)

9.4 व्यापारी, व्यापारिक प्रतिष्ठान और राज्य

9.5 सारांश

9.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस काल के व्यापार में संलग्न व्यापारी वर्ग और वाणिज्यिक गतिविधियों के बारे में जान सकेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- व्यापारिक गतिविधियों में संलग्न प्रमुख व्यापारिक समुदायों के बारे में जान सकेंगे;
- वाणिज्य में दलालों, सर्राफों और महाजनों की भूमिका का विश्लेषण कर सकेंगे; और
- हुंडी, वाणिज्यिक ऋण, ब्याज की दर और व्यापारिक भागीदारी जैसे पक्षों का मूल्यांकन कर सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

विवेच्य काल में अंतर्देशीय और विदेशी व्यापार का आप पहले ही अध्ययन कर चुके हैं। देश में स्थानीय रूप से व्यापार करने वाले छोटे व्यापारी भी थे और समुद्र व्यापार में संलग्न बड़े

*प्रो. ए. आर. खान, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
यह इकाई हमारे पाठ्यक्रम **ई एच आई 04 व्यापार के कार्मिक और वाणिज्यिक गतिविधियां खंड 6, इकाई 24** का पुनर्प्रकाशन है

व्यापारी भी मौजूद थे। पूरी वाणिज्यिक प्रक्रिया में, व्यापारियों के खास विशेषीकृत समुदाय, दलाल और सर्राफ विभिन्न स्तरों पर अपनी भूमिका निभाते थे।

बड़े पैमाने पर व्यापार होने के कारण कुछ मौजूद गतिविधियां और संस्थाएं मजबूत हुई और कुछ नये रूप सामने आए। बैंकिंग व्यवस्था, हुंडी और ऋण लेना तथा देना कुछ प्रमुख विशेषताएं थी। व्यापारिक भागीदारी और बीमा का भी प्रचलन था।

9.2 व्यापारी समुदाय

इस भाग में हम भारतीय बाजारों में काम कर रहे व्यापारियों, सर्राफों, महाजनों और दलालों पर विचार करेंगे। व्यापारिक गतिविधियों के बढ़ने से इन व्यवसायों की ओर काफी लोग आकृष्ट हुए। हालांकि उपर्युक्त व्यापारिक समुदायों का विभाजन बिल्कुल अलंध्य नहीं था। कभी–कभी एक ही व्यक्ति एक ही समय में दो या अधिक भूमिकाएं निभाता था। यहां हम इस काल के व्यापार और वाणिज्य में इन समुदायों की अलग–अलग भूमिकाओं के आधार पर उनका अलग–अलग अध्ययन करेंगे।

9.2.1 व्यापारी

सैद्धांतिक तौर पर वैश्यों से व्यापार करने की उम्मीद की जाती थी, पर व्यवहार में अलग–अलग पृष्ठभूमि के लोग व्यापार में संलग्न पाये जाते हैं। अपने अध्ययन के इस काल में हम पाते हैं कि किसी खास प्रदेश में कुछ खास समुदायों और जातियों का वर्चस्व होता था।

बंजारे: हमारे स्रोतों में व्यापारी समुदाय के रूप में बंजारों का उल्लेख मिलता है। ये एक क्षेत्र में गांवों के बीच और गांवों और शहर के बीच व्यापार करते थे, कभी–कभी ये अन्तर क्षेत्रीय स्तर पर भी व्यापार करते थे। वे ग्रामीण शहरी व्यापार की महत्वपूर्ण कड़ी थे। बंजारे अपनी व्यापारिक गतिविधियां अनाज, दाल, चीनी, नमक आदि वस्तुओं तक ही सीमित रखते थे। उनके पास बड़ी संख्या में पशु (खासकर सामान ढ़ोने के लिए बैल) होते थे और वे लोग घूम–घूमकर सामान बेचते और खरीदते थे। *तुजुक–ए–जहांगीरी* में जहांगीर कहता है "इस देश में बंजारा एक खास वर्ग है जिनके पास हजार के आसपास बैल होते हैं। वे गांव से शहर अनाज लाते हैं और सेना के साथ भी चलते हैं।" आमतौर पर बंजारे अपने परिवार और घर के सामान के साथ समूहों में घूमते थे। इधर–उधर घूमते इनके इस समुदाय को टाण्डा कहते थे। प्रत्येक टाण्डा का एक प्रधान होता था जिसे नायक कहते थे। कभी–कभी एक टाण्डा में 600–700 लोग (महिलाओं और बच्चों को मिलाकर) होते थे और प्रत्येक परिवार के पास अपने बैल होते थे।

बंजारे हिंदू भी थे और मुसलमान भी थे। कुछ विद्वान उन्हें उनके द्वारा व्यापार की जाने वाली वस्तुओं, अनाज, दाल चीनी, नमक और लकड़ी के आधार पर चार समूहों में विभाजित करते हैं।

बंजारे उत्तर भारत के कई भागों में व्यापार करते थे पर इसी प्रकार के और भी व्यापारी थे, जिन्हें दूसरे नामों से जाना जाता था। सिंध में इसी प्रकार का व्यापारी वर्ग कार्यरत था, जिसे नामधारी कहते थे। हिमालय और मैदानी इलाकों के बीच भोटिया नामक घुमंतू व्यापारी कार्यरत थे।

विभिन्न प्रदेशों में व्यापारी

एक महत्वपूर्ण वैश्य उपजाति, बनिया उत्तर भारत और दक्खन का महत्वपूर्ण व्यापारी वर्ग था। वे हिंदु और जैन (मुख्य रूप से गुजरात और राजस्थान में) धर्म मानने वाले थे। पंजाब में खत्री और गोलकुंडा में कोरनाती भी इसी वर्ग के लोग थे।

बनिया शब्द, संस्कृत शब्द वणिक अर्थात् व्यापारी से उत्पन्न हुआ है। बनिया समुदाय अपने नाम के साथ उपनाम भी लगाया करता था जिससे उनके मूल स्थान का पता चलता था। अग्रवालों का मूल स्थान अगरोहा (अभी हरियाणा में) और ओसवालों का मारवाड़ में ओसियां था। मारवाड़ के व्यापारियों की संख्या सबसे अधिक थी और इन्हें मारवाड़ी के नाम से जाना जाता था। वे देश के सभी हिस्सों में फैले हुए थे और हमारे अध्ययन काल के दौरान सर्वप्रमुख व्यापारी समुदाय था। इन व्यापारियों के बीच घनिष्ठ जातिगत बंधन था। इनकी अपनी परिषद् (महाजन) भी होती थी।

समकालीन यूरोपीय यात्रियों (लिनशोटेन 1583–89, टेवरनियर, 1656–67) ने बनियों की व्यापारिक निपुणता की दाद दी थी और उनके लेखे और बहीखाते संबंधी योग्यता की सराहना की थी।

बंजारों के विपरीत, बनिये सभी प्रकार की व्यापारिक गतिविधियों में शामिल थे। ग्राम स्तर पर वे अनाज और अन्य कृषि उत्पादों का व्यापार करते थे। उन्होंने साहूकारों के रूप में भी काम किया, किसानों और राज्य के अधिकारियों और रईसों सहित अन्य लोगों को ऋण दिया। नगरों में वे अनाज, वस्त्र, सोना, चाँदी, जवाहरात, विशिष्ट और विविध अन्य वस्तुओं का व्यापार करते थे। इनमें से कुछ के पास लाखों रुपयों की संपत्ति थी। उनके पास जहाजों का भी स्वामित्व था। समग्र रूप से समुदाय सादगी और मितव्ययिता के लिए जाना जाता था।

पंजाब में खत्री प्रमुख व्यापारी समुदाय था। सिख धर्म के संस्थापक गुरु नानक भी खत्री थे। इनमें से कइयों ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। इस समुदाय में हिंदू भी थे, मुसलमान भी और सिख भी। तेरहवीं–सत्तरहवीं शताब्दी में दिल्ली, पंजाब और सिंध के कुछ क्षेत्रों में कार्यरत मुलतानी प्रमुख व्यापारी समुदाय था। हमारे अध्ययन काल (1550–1750) में भी उनका अक्सर उल्लेख मिलता है।

बोहरा गुजरात के महत्वपूर्ण व्यापारी थे। वे ज्यादातर मुसलमान थे। वे शहरी समुदाय थे और मुख्य तौर पर गुजरात और अन्य पश्चिमी इलाकों में बसे हुए थे। गुजरात के अलावा उज्जैन और बुरहानपुर में भी उनकी कुछ बस्तियां थीं। मुल्ला मुहम्मद अली और अहमद अली जैसे बोहरा व्यापारियों के पास लाखों रूपयों की सम्पदा थी। पश्चिमी तट पर व्यापार में संलग्न मुसलमान व्यापारी समुदायों में खोजाह और गुजरात के कच्छी (कच्छ के) मेमन भी प्रमुख थे।

दक्षिण भारत

इस उपमहाद्वीप के दक्षिणी भाग में कई व्यापारिक समुदायों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। चेटटी ऐसा ही एक समुदाय था। यह शब्द संस्कृत श्रेष्ठी (सेठ) से उत्पन्न हुआ है। संभवतः चेट्टी काफी धनाड्य व्यापारी थे। कोरोमंडल तट से लेकर उड़ीसा तक के व्यापारियों को क्लिंग के नाम से जाना जाता था। कोमती भी एक व्यापारी वर्ग था। वे मुख्यतः कपड़े के दलाल थे और देश के अंदरूनी इलाकों से बंदरगाहों तक माल लाने का काम करते थे। वे मुख्यतः तेलुगु भाषी थे।

चेटटी की तरह चूलिया भी एक व्यापारी समुदाय था जो चार उप समुदायों में विभक्त था। इनमें मरककयर सबसे धनाड्य व्यापारी थे और ये तटीय और दक्षिण–पूर्वी एशियाई व्यापार में संलग्न थे। यह काफी गतिमान समुदाय था और इनमें से कई श्रीलंका, मालदीव, मलक्का, जोहोर, जावा तट, स्याम और बर्मा जाकर बस गए थे। भारत में दक्षिण में, कोरोमंडल, मदुरा, कुडडालोर, पोर्टो नोवा, नागोल, नाग–पट्टणम, कोयलपट्टनम आदि स्थानों में सक्रिय थे। वे मुख्य रूप से वस्त्र, सुपारी, मसाले, अनाज, सूखी मछली, नमक, मोती और बहुमूल्य रत्नों का व्यापार करते थे।

कोरोमंडल से मालाबार और श्रीलंका तक छुर्तियन पारव नामक समुदाय व्यापार में सक्रिय था। तटीय व्यापार और दलाली में उन्हें विशेषज्ञता प्राप्त थी।

मुसलमानों में, गोलकुंडा मुसलमान समुद्रपारीय व्यापार में संलग्न थे। मद्रास के दक्षिण और बंगाल की खाड़ी क्षेत्र में वे प्रमुख व्यापारी थे। भारतीय अरब मूल के मोपिल्ला मुसलमान भी इस क्षेत्र में कार्यरत महत्वपूर्ण व्यापारी थे। मद्रास प्रदेश में गुजराती व्यापारी भी कार्यरत थे।

विदेशी व्यापारी

इस काल के लगभग सभी वाणिज्यिक केन्द्रों में विदेशी व्यापारियों की उपस्थिति का उल्लेख मिलता है। इनमें यूरोपीय व्यापारियों की व्यापारिक गतिविधियों की चर्चा **इकाई 8** में की जा चुकी है। अन्य विदेशी व्यापारियों में अरमेनियन सर्वप्रमुख हैं। वे कपड़े से लेकर तम्बाकू तक अनेक प्रकार की वस्तुओं का व्यापार करते थे। वे बंगाल, बिहार और गुजरात में अधिक सक्रिय थे। खुरासानी, अरब और ईराकी भी अक्सर भारतीय बाजारों में काफी संख्या में आते रहते थे।

बोध प्रश्न 1

1) अंतर्देशीय व्यापार में बंजारों की भूमिका का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

2) भारत के विभिन्न भागों में कार्यरत चार व्यापारी समुदायों का नाम बताइए।

....

....

....

....

9.2.2 महाजन और सर्राफ

उत्तर भारत के बड़े भाग में परंपरागत व्यापारी गण व्यापार के साथ–साथ ब्याज पर रूपया भी देते थे। गांवों में परंपरागत बनिया, किसानों को, राजस्व का भुगतान करने के लिए भी

उधार दिया करता था। शहरों और बड़े स्थानों में भी व्यापारियों ने साहूकारों के रूप में काम किया।

सर्राफ भी व्यापार में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे। उनके तीन कार्य थेः 1) मुद्रा विनिमयदाता; 2) बैंकर का काम करना; 3) सोना, चांदी और गहने के व्यापारी। यहां हम पहले दो कार्यों पर चर्चा करेंगे तीसरा कार्य किसी भी अन्य वस्तु के व्यापार की भांति ही था।

सर्राफ सिक्के की धातुगत शुद्धता और वजन के पारखी और विशेषज्ञ माने जाते थे। वे धातु की मुद्रा की विनिमय दर भी निर्धारित करते थे। टैवेरनियर के अनुसार ''भारत के किसी गांव में अगर बहुत सर्राफ न हो तो निश्चय ही एक काफी छोटा गांव होगा। वह बैंकर के रूप में लोगों के पैसे का लेन–देन करता था और हुंडियां भी जारी करता था।''

जैसा कि हमने **बी एच आई सी 109 की इकाई 15** में अध्ययन किया है सर्राफ मुगल मुद्रा ढ़लाई व्यवस्था का भी एक अंग था। प्रत्येक टकसाल में एक सर्राफ होता था जो धातु की शुद्धता और ढ़लाई के बाद सिक्के की शुद्धता की जांच करता था।

बैंकर के रूप में लोगों का वे धन सुरक्षित रखते थे और ब्याज पर ऋण देते थे। वे हुंडी जारी करते थे और दूसरों द्वारा जारी हुंडियों के बदले अपना कमीशन काटकर भुगतान भी करते थे (इस पक्ष पर हम इसी इकाई में आगे विस्तार के साथ विचार करेंगे)।

9.2.3 दलाल

उत्तर भारत पर तुर्की विजय के बाद के काल में दलाल एक विशेषीकृत वाणिज्यि वर्ग के रूप में कार्यरत थे। वे विभिन्न वाणिज्यिक गतिविधियों और लेन–देन में मध्यस्थ के रूप में कार्य करते थे। अन्तरप्रान्तीय और विदेशी व्यापार के बढ़ने से उनकी भूमिका अपरिहार्य हो गई। दूर से आये हुए व्यापारी और विदेशी व्यापारी उन पर काफी निर्भर रहते थे। ए. जान. कैसर के अनुसार विदेशी व्यापारी यहां के उत्पादन के केन्द्र, विपणन की पद्धति और भाषा नहीं जानते थे। उन्हें इस सबके लिए स्थानीय दलालों पर निर्भर करना पड़ता था। भारत में दलालों की जरूरत कुछ कारणों से महत्वपूर्ण हो गई थी। वे इस प्रकार हैंः

1) एक ही वस्तु के उत्पादन के केन्द्र पूरे भारत में फैले हुए थे;
2) प्रत्येक केन्द्र का उत्पादन सीमित था (कुछ केन्द्र खास वस्तुओं का ही उत्पादन करते थे); और
3) एक ही बाजार में एक ही वस्तु के काफी खरीददार होते थे। दलालों की सहायता से लेन–देन किए जाने के कई प्रमाण मिलते हैं।

इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के दस्तावेजों से पता चलता है कि उन्होंने अपने व्यावसायिक प्रतिष्ठानों में भी दलालों को नियुक्त किया था। फ्रायर (17वीं शताब्दी) के अनुसार दलाल के बिना देशी या विदेशी कोई भी व्यापारी व्यापार नहीं कर सकता था। ''ओविंग्टन (1690) ने भी टिप्पणी की है कि ''कम्पनी की वस्तुओं को बेचने और खरीदने के लिए बनिया जाति के दलालों को नियुक्त किया जाता था, जो वस्तुओं के मूल्य और गुणों के पारखी होते थे।''

मैनरीक (1640) बताता है कि पटना में लगभग 600 दलाल और मध्यस्थ थे। सूरत, अहमदाबाद, आगरा और अन्य तटीय शहरों और बड़े वाणिज्यिक केंद्रों में उनकी संख्या अवश्य ही अधिक रही होगी।

विदेशी बंदरगाहों पर भी भारतीय दलाल मौजूद होते थे। वे गोम्बरून (बन्दर अब्बास) बसरा, बन्दर रिग आदि स्थानों में भी कार्यरत थे। कभी–कभी पूरा परिवार भागीदारी में दलाली का काम करता था। हमें भीमजी पारक, एक प्रमुख दलाल, के बारे में जानकारी मिलती है कि वह अपने भाइयों के साथ मिलकर दलाली का काम करता था। इस व्यापार के लाभ में उसके पास 8, कल्याणदास के पास 5, केस्सों और विटठलदास के पास 4–4 हिस्से थे।

ए. जान. कैसर दलालों को चार कोटियों में विभक्त करते हैं:

1) कम्पनी या व्यापारियों द्वारा नियुक्त दलाल जो केवल उनके लिए कार्य करते थे;
2) कई ग्राहकों के लिए स्वतंत्र रूप से काम करने वाले दलाल;
3) वे जो तदर्थ आधार पर दलाल–ठेकेदार के रूप में काम करते थे; और
4) वाणिज्यिक केंद्रों पर खरीद और बिक्री को पंजीकृत करने के लिए राज्य द्वारा नियुक्त दलाल।

वस्तुओं की विशेषता के आधार पर स्वतंत्र रूप से कार्य कर रहे दलालों को कई समुदायों में विभक्त किया जा सकता है। कई दलाल किसी एक वस्तु की ही दलाली किया करते थे और इसके विशेषज्ञ माने जाते थे जैसे रेशम, शोरा, सूती कपड़ा, नील आदि। कुछ दलाल एक से अधिक वस्तुओं की दलाली करते थे। कुछ दलाल प्रतिष्ठित दलालों के उप दलाल या मातहत दलाल के रूप में कार्य करते थे।

दलालों का शुल्क या कमीशन नियत नहीं होता था। यह वस्तु विशेष, सौदा तय करने में दलाल के परिश्रम या वस्तु प्राप्त करने में लगे श्रम आदि पर निर्भर करता था। आम लेन–देन में दलाली कुल मूल्य का दो प्रतिशत होती थी। प्रत्येक पक्ष (बेचने वाला और खरीददार) से एक प्रतिशत की दर से शुल्क वसूला जाता था।

नियमित रूप से नियुक्त दलालों को नियत वेतन और लेनदेन में कुछ कमीशन भी मिलता था। हमें उनकी कुल आय का पता नहीं है। हालांकि इंग्लिश कंपनी के कुछ दस्तावेजों को देखने से पता चलता है कि उनके दलालों को 10 रूपये से 38 रूपये प्रतिमाह की दर से वेतन दिया जाता था।

अपने ग्राहकों से माल लेने और बेचने के अलावा दलाल उत्पादन की प्रक्रिया और संगठन में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे। व्यापारियों द्वारा कारीगरों को दी जाने वाली अधिकांश अग्रिम राशि इन दलालों के माध्यम से ही दी जाती थी।

बोध प्रश्न 2

1) सर्राफों की विभिन्न भूमिकाओं पर विचार कीजिए।

....

....

....

....

2) दलाल कौन थे? विभिन्न प्रकार के दलालों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

9.3 वाणिज्यिक पद्धतियां

इस भाग में हम इस काल के व्यापार और वाणिज्यि से जुड़ी विभिन्न गतिविधियों पर विचार करेंगे।

9.3.1 हुंडी

इस काल में हुंडी मुद्रा विनिमय का प्रमुख साधन हो गई थी। हुंडी कागज पर लिखा एक वचन पत्र होता था जिसके द्वारा किसी निर्धारित समय और स्थान पर लिखी गई राशि देने की व्यवस्था की जाती थी। इस प्रथा का आरंभ वाणिज्यिक कार्यों के लिए मुद्रा के रूप में अधिक धन को लेकर जाने वालों के खतरे को ध्यान में रखकर हुआ। व्यापारी अपनी राशि किसी खास स्थान पर सर्राफ के पास जमा कराकर हुंडी ले लिया करते थे। व्यापारी अपने गंतव्य स्थान पर यह हुंडी सर्राफ के प्रतिनिधि को देकर अपनी राशि वापिस ले सकता था। इससे धन का स्थानांतरण आसान और सुरक्षित हो गया। शनैः शनैः हुंडी स्वयं लेन देन का आधार बन गयी। किसी लेनदेन में इसे प्रस्तुत किया जा सकता था। इसे अनुमोदित करने के बाद बाजार में बेचा या खरीदा जा सकता था।

इरफान हबीब के अनुसार ''हुंडी के लेन–देन का इतना अधिक प्रचलन हो गया कि अक्सर व्यापारिक लेनदेन में नगद भुगतान के स्थान पर हुंडी ली और दी जाने लगी।'' इस प्रक्रिया में यह भुगतान का माध्यम बन गई।

हुंडी का प्रयोग इतना व्यापक था कि राजकोष और राज्य भी इसका उपयोग करते थे। इसके कई उदाहरण मिलते हैं। 1599 में राजकोष ने दक्कन में सेना को 3,00,000 रूपये हुंडी के द्वारा भेजे। गोलकुंडा (10,00,000 रूपये) और घक्कर के शासक (50,000 रूपये) ने मुगल बादशाह को अपना नजराना हुंडी के रूप में भेजा।

हमें इस बात के भी सबूत मिले हैं कि प्रांतीय पदाधिकारियों को हुंडियों के जरिए राजस्व स्थानान्तरित करने का निर्देश दिया जाता था। यहां तक कि वरिष्ठ कुलीन भी अपने व्यक्तिगत धन के स्थानान्तरण के लिए सर्राफों की सहायता लेते थे। बिहार के सूबेदार मुकर्रब खां ने पटना से आगरा स्थानान्तरित होते समय पटना के सर्राफ को 3,00,000 रूपये आगरा पहुंचाने के लिए दिए थे।

सर्राफ के अतिरिक्त कई बड़े व्यापारी भी हुंडी जारी करते थे। प्रमुख वाणिज्यिक स्थानों पर इन व्यापारियों और सर्राफों के प्रतिनिधि रहा करते थे। कभी–कभी एक परिवार के सदस्य (पिता, पुत्र, भाई, भतीजा) एक दूसरे के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करते थे। बड़े प्रतिष्ठानों के प्रतिनिधि विदेशों में भी होते थे।

सर्राफ प्रत्येक हुंडी के लिए शुल्क लिया करता था। विनिमय के कमीशन की दर सूद की दर और विनिमय अवधि पर निर्भर करती थी। हुंडी जारी करने से हुंडी वापस करके राशि वापस लेने तक के दिन की अवधि गिनी जाती थी। हुंडी जारी करने और इसके परिपक्व होने के समय मुद्रा की उपलब्धता के आधार पर भी दर ऊपर नीचे होती रहती थी। अगर मुद्रा की उपलब्धता अच्छी होती थी तो दर गिर जाती थी। अभाव की स्थिति में दर ऊंची हो जाती थी। इरफान हबीब के अनुसार, ''एक स्थान पर ज्यादा भुगतान करने पर सर्राफ के पास नगद की कमी हो जाती थी और दूसरे स्थान पर नगद की उपलब्धता ज्यादा हो जाती थी। इस स्थिति में जहां नगद की कमी होती थी वहां नगद लेने को प्रोत्साहित किया जाता था और जहां नगद की उपलब्धता ज्यादा होती थी वहां नगद देने को प्रोत्साहित किया जाता था। इसके कारण विनिमय दर में भी परिवर्तन होता रहता था।''

एक सामान्य जानकारी के लिए यहां कुछ विनिमय दरों का उल्लेख किया जा रहा है। आमतौर पर पटना से आगरा की हुंडी के लिए 1.5 प्रतिशत और पटना से सूरत के लिए 7–8 प्रतिशत शुल्क किया जाता था। 1622 में अहमदाबाद से बुरहानपुर के लिए हुंडी शुल्क 7.25 प्रतिशत था।

9.3.2 बैंकिंग

सर्राफ हुंडी जारी करने के साथ–साथ अपने पास दूसरों की राशि भी जमा करते थे। जमाकर्ता की मांग पर यह राशि उसे वापस दे दी जाती थी। जमाकर्ता को जमा राशि पर ब्याज भी मिलता था। जमाकर्ता को दी जाने वाली ब्याज की दर बदलती रहती थी। 1645 में आगरा में और 1630 में सूरत में ब्याज की दर साढ़े नौ प्रतिशत प्रति वर्ष थी। बैंकर जमा राशि का उपयोग अधिक ब्याज पर ऋण देकर किया करता था। ऐसे कई हवाले मिले हैं जहां राज्य अधिकारी राजकोष से इन बैंकरों को राशि दिया करते थे। बंगाल के जगत सेठ के बारे में लिखते हुए तपन राय चौधरी कहते हैं कि ''उसकी भौतिक समृद्धि का मूल कारण यह था कि वे बंगाल राजकोष के धन का उपयोग करने की स्थिति में थे और इस धन को ब्याज पर दे सकते थे।''

सुजान राय के (1694 ई.) अनुसार लेन–देन में सर्राफ ईमानदार होते थे। यहां तक कि अनजान आदमी भी उनके पास हजारों रूपये जमा करके निश्चिंत हो सकता था और आवश्यकता के समय वापस ले सकता था।

9.3.4 सूदखोरी और ब्याज की दर

व्यक्तिगत जरूरतों और वाणिज्यिक उद्देश्यों के लिए पैसा उधार लेने का आम प्रचलन था। अधिकांश व्यापार ब्याज पर लिए पैसे से ही होता था। आमतौर पर सर्राफ और व्यापारी दोनों ही पैसा उधार देने का काम करते थे। कभी–कभी पैसा उधार देने का काम एक अलग कोटि का वाणिज्यिक वर्ग करता था जिन्हें साह कहा जाता था। ऋण विभिन्न उद्देश्यों के लिए लिया जाता था। किसान राजस्व के भुगतान के लिए ऋण लिया करते थे और कटाई के समय ऋण चुकाया करते थे। कुलीन और जमींदार अपने रोजमर्रा के खर्च के लिए ऋण लिया करते और राजस्व वसूली के समय भुगतान किया करते थे। व्यापारिक उद्देश्यों के लिए ऋण लेना भी आम बात थी।

कम राशि के ऋणों पर सूद की दर के निर्धारण के बारे में जानना जरा मुश्किल है। यह व्यक्ति की जरूरत, बाजार में उसकी साख और सौदेबाजी करने की उसकी शक्ति पर निर्भर

करता था। तपन राय चौधरी के अनुसार 18वीं शताब्दी में बंगाल के किसान 150 प्रतिशत, प्रति वर्ष की दर से भी ऋण लिया करते थे। वाणिज्यिक ऋण पर अलग–अलग प्रांतों में अलग–अलग ब्याज दर होती थी। हमारे स्रोतों में प्रति महीने की दर से ब्याज का उल्लेख मिलता है। इरफान हबीब के अनुसार प्रति महीने के दर से ब्याज के उल्लेख का मतलब था कि ऋण अल्प–अवधि के लिए लिया और दिया जाता था।

1620–21 में पटना में सूद की दर 9 प्रतिशत प्रतिवर्ष होने का उल्लेख मिलता है। 1680 के आसपास यह 15 प्रतिशत से भी अधिक हो गया मालूम होता है। 1679 में कासिमबाजार (बंगाल) में प्रचलित सूद की दर प्रतिवर्ष 15 प्रतिशत बताई गई है जबकि इसी समय यह दर मद्रास में 8 प्रतिशत और सूरत में 9 प्रतिशत थी। ब्रिटिश कम्पनी के प्रतिष्ठान ब्याज की दर पर नजर लगाए रखते थे और जिस प्रांत में ब्याज की दर कम होती थी उस प्रांत से ऋण लेकर यह राशि दूसरे प्रांतों में भेज दिया करते थे। 17वीं शताब्दी के दौरान आगरा और सूरत में ब्याज की दर प्रतिवर्ष 6 से 12 प्रतिशत थी। कोरोमंडल तट पर यह दर 18 प्रतिशत से 36 प्रतिशत तक थी।

विभिन्न स्थानों पर ब्याज की दर की भिन्नता साबित करती है कि उस समय तक वित्तीय बाजारों का एकीकरण नहीं हो सका था।

पोतबंधक ऋण

लंबी दूरी के समुद्री व्यापार में कई प्रकार की अनिश्चिताएं और खतरे थे। इन अनिश्चितताओं के कारण पोतबंधक ऋण की शुरुआत हुई। यह एक प्रकार का सट्टेबाजी निवेश था जो उस काल में काफी प्रचलित था। इसमें ब्याज की दर 14 से 60 प्रतिशत तक होती थी। यह राशि किसी खास स्थान को जा रहे जहाज में निवेशित की जाती थी। ब्याज की दर यात्रा विशेष के खतरे पर निर्भर करती थी। यात्रा या सभी खतरों और नुकसान से ऋणदाता ही प्रभावित होता था।

9.3.4 भागीदारी

भागीदारी में व्यापारीगण अपने संसाधनों को एक साथ मिलाकर व्यापार करते थे। कुछ लोग मिलकर समुद्र–पार व्यापार की योजनाएं बनाया करते थे। अकबर के शासनकाल में दो कुलीनों नवाब कुतुबुदीन खां और नवाब किलिच खां ने जहाज बनवा कर संयुक्त रूप से व्यापार किया था। बनारसीदास ने 1611–16 में जवाहरात के व्यापार में अपने भागीदार का उल्लेख किया है। यहां तक कि दलाल भी भागीदारी में काम करते थे। 1662 में दो दलाल छोटा ठाकुर और सूरत के सोमीजी ने संयुक्त रूप से मेफ्लावर नामक एक जहाज हासिल किया और उसे यात्रा के लिए सुसज्जित किया। कभी–कभी दलाल भी संयुक्त रूप से व्यापार करते थे।

9.3.5 बीमा (आंतरिक और समुद्री)

उस समय सीमित रूप में बीमा नामक वाणिज्यिक प्रथा भी भारत में प्रचलित थी। कई मामलों में सर्राफ माल को सुरक्षित रूप से पहुंचाने की जिम्मेदारी ले लेते थे। अंग्रेजी कम्पनी के दस्तावेजों में भी अंतर्देशीय और विदेशी व्यापार में वस्तुओं के बीमा का उल्लेख मिलता है। समुद्र में जहाज और उस पर लदे सामान दोनों का बीमा होता था। कारखाने के दस्तावेजों में बीमा दर का उल्लेख भी मिलता है। 18वीं शताब्दी तक यह प्रथा अच्छी तरह स्थापित हो

चुकी थी और सब जगह प्रचलित थी। विभिन्न गंतव्य स्थानों के लिए और विभिन्न वस्तुओं के लिए बीमा दरों का भी उल्लेख किया गया है। समुद्र के रास्ते जाने वाले माल की बीमा दर जमीन के रास्ते जाने वाले माल की बीमा दर से ज्यादा थी।

9.4 व्यापारी, व्यापारिक प्रतिष्ठान और राज्य

हम **बी एच आई सी–109 की इकाई 7 और 15** में पढ़ चुके हैं कि राज्य द्वारा विभिन्न व्यापारिक गतिविधियों पर कर लगाया जाता था। माल इधर–उधर ले जाने के लिए भी व्यापारियों को कर और चुंगी देनी पड़ती थी। राज्य की कुल आय में इन स्रोतों से होने वाली आय भू–राजस्व की तुलना में काफी कम थी।

शहर वाणिज्यिक गतिविधियों के केन्द्र होते थे। अतः प्रशासनिक अधिकारी इस बात का ख्याल रखते थे कि व्यापारिक गतिविधियों में कोई अड़चन न आए। कानून और व्यवस्था तथा शांति और सुरक्षा से बेहतर व्यापारिक माहौल बनता था। यह जिम्मेदारी कोतवाल और शहर में मौजूद उनके कर्मचारियों की थी।

रोजमर्रा के कामकाज, व्यापार से संबंधित नियम और कायदे व्यापारिक समुदाय स्वयं बनाया करता था। व्यापारियों की अपनी श्रेणियां और संगठन होते थे जो नियम बनाते थे। हमारे स्रोतों में इस प्रकार के संगठनों का उल्लेख मिलता है। गुजरात में इन्हें महाजन कहा जाता था। 18वीं शताब्दी की पहली तिमाही में हम अहमदाबाद में 53 महाजनों का उल्लेख पाते हैं। एक खास इलाके और खास वस्तु के व्यापार करने वाले व्यापारी अपने को महाजन में संगठित करते थे। इसमें कोई जातिगत बंधन नहीं होता था। कभी–कभी बड़े व्यापारियों के लिए भी महाजन शब्द का प्रयोग संभवतः इसलिए होता था क्योंकि वे अपने संगठन के प्रधान हुआ करते थे। व्यावसायिक वर्गों के कई जाति आधारित संगठन भी मौजूद थे।

शहर के सबसे प्रभुत्वशाली और धनाड्य व्यापारी को नगर सेठ कहा जाता था। कभी–कभी यह पद अनुवांशिक भी माना जाता था। नगर सेठ राज्य और व्यापारिक समुदाय के बीच एक कड़ी के रूप में कार्य करता था। व्यापारियों के बीच मतभेदों और झगड़ों को सुलझाने में महाजन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था। आमतौर पर उसके निर्णय का सम्मान किया जाता था। मुगल प्रशासन ने भी इन महाजनों को मान्यता प्रदान की और मतभेद तथा संघर्ष की स्थिति में उनकी सहायता ली। अक्सर प्रशासनिक नीतियों के लिए भी उनकी मदद मांगी जाती थी। व्यापारिक संगठन मजबूत हुआ करते थे और शहर और बंदरगाहों में अधिकारियों के अत्याचारों या दुर्व्यवहार का विरोध किया करते थे। प्रशासनिक कार्यवाहियों के खिलाफ व्यापारिक संगठनों द्वारा हड़ताल (व्यापारिक प्रतिष्ठानों और दुकानों को बंद करना) किए जाने का भी कई जगह उल्लेख मिलता है। राजस्व में बहुत नुकसान के कारण प्रशासकों को इस संयुक्त विरोध के आगे अक्सर झुकना पड़ता था। एक ऐसा ही गंभीर संघर्ष 1669 में सूरत में हुआ। यहां नये सूबेदार के अत्याचार के विरोध में व्यापारियों ने अपने परिवार समेत (लगभग 8000 लोग) सूरत छोड़ दिया। वे भड़ौंच में बस गए और सम्राट औरंगजेब के पास याचिका भेजी। पूरे शहर की व्यापारिक गतिविधि ठप्प पड़ गई। सम्राट ने शीघ्रता से हस्तक्षेप किया और समस्या को सुलझाया।

1639 में शाहजहां ने सूरत के एक बड़े व्यापारी वीरजी वोहरा को सूरत के सूबेदार के विरूद्ध व्यापारियों की शिकायतें सुनने के लिए बुलाया। उत्तराधिकार के लिए हो रहे युद्ध

के समय शाहजहां के बेटे मुराद ने अहमदाबाद के नगर सेठ शांतिदास के माध्यम से 5,50,000 रूपये उगाहे थे। मुराद की मृत्यु के बाद औरंगजेब ने इसके भुगतान की जिम्मेदारी ली।

इतनी विशाल सम्पदा (कहा जाता है कि वीरजी वोहरा अपनी मृत्यु के समय 80,00,000 रूपये की सम्पत्ति छोड़ गया था) के बावजूद व्यापारी राजनीति में ज्यादा रूचि नहीं लेते थे।

व्यापारी दरबार की राजनीति से दूर रहते थे पर कुलीन वर्ग व्यापार में हिस्सा लेता था। कई बड़े सरदार व्यापार में मुनाफा कमाने के लिए अपने पद का सहारा लेते थे।

शाइस्ता खां ने कई वस्तुओं, खासकर शोरा, पर एकाधिकार स्थापित करने की कोशिश की। मीर जुमला, एक अन्य प्रमुख कुलीन, हीरा व्यापारी था। निचले स्तर के अधिकारी भी व्यापारिक गतिविधियों में शामिल थे और जोर–जबरदस्ती का रास्ता अपनाते थे। अंतर्देशीय और विदेशी व्यापार संबंधी इकाई में भी कुलीनों के व्यापार में शामिल होने के पक्ष पर विचार किया गया है।

बोध प्रश्न 3

1) हुंडी पर पांच पंक्तियां लिखिए।

....

....

....

....

2) निम्नलिखित में से प्रत्येक पर तीन पंक्तियां लिखिएः

i) ब्याज की दर :

....

....

....

ii) बीमा :

....

....

....

....

iii) व्यापारियों के व्यावसायिक संगठन पर पांच पंक्तियां लिखिएः

....

....

....

....

9.5 सारांश

इस इकाई में हमने व्यापार में संलग्न कई विशेषीकृत समुदायों की गतिविधियों का अध्ययन किया। प्रांतीय और अंर्तप्रांतीय स्तर पर कई वस्तुओं के व्यापार में बंजारों की भूमिका महत्वपूर्ण होती थी। वे अपने पशुओं के साथ घूम–घूम कर व्यापार करते थे और मुख्य रूप से अनाज, नमक, चीनी आदि की खरीद बिक्री करते थे।

देश के विभिन्न हिस्सों में कई प्रकार के व्यापारिक समुदाय और जातियां मौजूद थीं। बनिया, वोहरा, खत्री, चेट्टी, कोमामी, आदि प्रमुख व्यापारी समुदाय थे। विदेशी व्यापारियों में अंग्रेज, डच, फ्रांसीसी, पुर्तगाली, अरमेनियन, खुरासानी और इराकी प्रमुख थे।

दलाल, सर्राफ और महाजन विशेषीकृत वाणिज्यिक समुदाय थे। हुंडी और ऋण देने की प्रथा पूर्ण रूप से विकसित थी। ब्याज की दर कुछ अधिक थी।

व्यापारिक श्रेणियां और संगठन पूर्ण रूप से स्थापित थे। व्यापारिक और वाणिज्यिक गतिविधियों के लिए आमतौर पर वे ही नियम और कानून बनाया करते थे।

9.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) बंजारे मुख्य रूप से अनाज, नमक, चीनी आदि का व्यापार करते थे। वे बड़े समुदाय में रहते थे। विस्तार के लिए 9.2.1 उपभाग देखिए।।

2) मारवाड़ी, वोहरा, मुल्तानी, चेट्टी, कोमाती आदि विभिन्न व्यापारिक समुदाय थे। इनके कार्यक्षेत्र के लिए 9.2.1 उपभाग देखिए।

बोध प्रश्न 2

1) सर्राफ मुद्रा विनिमयकर्ता, ऋणदाता के रूप में कार्य करते थे और सिक्के की शुद्धता की जांच करते थे। देखिए उपभाग 9.2.2।

2) वाणिज्यिक लेनदेन में दलाल मध्यस्थ की भूमिका निभाता था। विभिन्न कोटियों के लिए उपभाग 9.2.3 देखिए।

बोध प्रश्न 3

1) हुंडी धन स्थानांतरित करने का एक आसान और सुरक्षित माध्यम था। विस्तार के लिए उपभाग 9.3.1 देखिए।

2) दोनों प्रथाओं के लिए उपभाग 9.3.3 और उपभाग 9.3.5 देखिए।

3) अपने हितों की रक्षा के लिए व्यापारी अपना संगठन बनाते थे और अपने नियम एवं कानून स्वयं बनाते थे। विस्तार के लिए देखिए भाग 9.4।

इस इकाई के लिए कुछ उपयोगी अध्ययन सामग्री

Raychaudhuri, Tapan & Habib, Irfan. ed. 1982. *The Cambridge Economic History of India, Vol. I: c. 1200-1750*, London: Cambridge University Press.

Habib, Irfan. 1990. 'Merchant Communities in Pre-Colonial India', in *The Rise of Merchant Empires, Long-Distance Trade in the Early Modern World 1350-1750,* James D. Tracy, ed., Cambridge.

Haider, Najaf. 1999. 'The Quantity Theory and Mughal Monetary History', *Journal of Medieval History,* Vol. 2, no. 2.

Haider, Najaf. 1998. 'International Trade in Precious Metals and Monetary Systems of Medieval India: 1200-1500', *Proceedings of the Indian History Congress,* 59th Session, Patiala.

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY